एक नीच ट्रैजेडी

मृणाल पाण्डे



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु 18.00

प्रथम संस्करण 1981

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली 110002

मुद्रक रुचिका प्रिंटर्स द्वारा मॉडर्न प्रिंटर्स, दिल्ली 110032

आवरण रामकुमार

EK NEECH TRAGEDI
Short Stories *by* Mrinal Pardey

पिस गया वह भीतरी
औ' बाहरी दो कठिन पाटों बीच
ऐसी ट्रैजेडी है नीच ! !

—ग मा मुक्तिबोध

क्रम

बर्फ

नौकर लालटेन जलाकर तिपाई पर रख गया था। हल्की भूरी-नारंगी रोशनी में ठण्ड से उकड़ूँ बैठे वे तीनों और भी सिकुड़े सिकुड़ाये लग रहे थे, एकदम कुबड़े बौना-जैसे। पर पीछे दीवार पर पड़ती उन्हीं की परछाइयाँ न मालूम कितनी बड़ी होकर रोशनी में घूम रही थीं, जैसे उन्हें बड़े-बड़े तीन राक्षस दबोचने आ रहे हों। सहमकर वह अँगीठी के और पास खिसक आयी। बिजली की लाइन इस इलाके में टूटी तो हफ्ते भर की छुट्टी। अँगीठी के कोयले जल-जलकर एकदम ही राख हुए जा रहे थे। उसका मन हुआ नौकर को पुकारकर कहे कि थोड़ा सुलगा लाये, पर चुप्पी तोड़ने की कल्पना ही इतनी भयावह थी कि वह चुपचाप बुझते टुकड़े तिनके से कुरेदने लगी। 'उहुँ धुआँ आता है,' छोटे ने आँखें सिकोड़ीं, पीछे परछाईं का हण्डा-सा सिर हिला— मत करो ना'

उसने तिनका कोने की ठण्डी राख में गाड़ दिया और फिर चुप बैठ गया। घुटनों पर ठोड़ी टिकाये टिकाये उसकी छाया भी चुप। कैसा आश्चर्य है, उसने सोचा, जितनी कम रोशनी होती है उतनी ही बड़ी छाया, और अगर वह लालटेन भी न हो तो? तब तो शायद उनकी एकसार होती परछाइयाँ ही परछाइयाँ बच रहेंगी, खुद वह तो गायब ही हो जायेंगे।

उठकर उसने चुपचाप बत्ती कुछ उकसा दी। बड़ा कुछ बुदबुदाया। कुढ़-कर उसने बत्ती फिर कम कर दी और बैठ गयी। कोयलों में तो शायद कुछ

बचा नही था

'जरा देखकर आ ना उधर !" बडा मनुहार भरे स्वर मे फुसफुसाया।

'तू ही क्यो नही चला जाता ?" हिंस्र स्वर मे वह फुसफुसायी।

'तुझे तो कुछ नही कहेंगे भाई !"

"तो तुझे ही कौन चीरकर खा जायेंगे !"

"प्लीज्ज !"

स्वार्थी हो तुम दोनो।" डर और गुस्से से फुसफुसाहट कुछ ऊँची हो गयी।

'श्श प्लीज !" छोटे ने आख पर से बाल हटाये।

धाय्। कुछ टूटा शायद। तीनो चौक्कर स्तब्ध हो गये, परछाइयो के सिर छत पर एक दूसरे से जुडे थे।

'चाय की केतली है शायद !" उसने बताया।

"उहुँक, कोई किताब है !" बडे ने खुद तिनके से आग कुरेदना चालू कर दिया।

"मा ने फेंकी होगी !" छोटे की बडी-बडी गोल-गोल आखो मे कौतूहल था।

"तो क्या ?" उसने बडप्पन से कहा, "पिछली बार तो तकिय को चीरकर सारे कमरे मे पर ही-पर फैला दिये थे।

हो सकता है बाबा ने फेंका हो, वे भी तो भूल जाते हैं कि मा का दिमाग गुस्से मे "बडा उसकी तरेरी आँखो की घुडकी से सहमकर चुप हो गया।

मा का दिमाग क्या ? एँ ? क्या ?" छोटे ने कौतूहल से राख फूँकी।

'कुछ नही, तेरा सिर।' उसन उडती राख से परेशान होकर दुपट्टा झटकाया—'जा, तू ही देख आ ना जाकर धीरे-से जाना समझा ? भीतर मत घुसना। दूर कमरे म लडाई की ऊँची बेसुरी आवाजें फिर आ रही थी छोटे ने बडे को ताका—'चला जा यार !"

बडे ने ठोडी खुजायी।

छोटे के जाते ही दोनो पास पास सिमट आये।

हद कर देती है कभी-कभी माँ भी, समझ नही आता इसे सीधे बोलना भी नही आता क्या ?" उसकी तल्ख आवाज आँसुओ मे फँस गयी।

'उसका ही कसूर थोडी है, बाबा भी तो "

"हाँ, सो तो है ही," वह कुछ देर चुप रही "कोयले भी बुझ गये हैं।"

"दानादीन को पुकारो, दूसरे डाल लायगा।"

'नही बाबा, पुकारने की हिम्मत मेरी नही है, फिर कही नये कोयले देखकर भाड पडी फिजूलखर्ची पर, तो ?"

बाहर बर्फ की खूब तेज आँधी चल रही थी एकदम घुप्प अँधेरा था, कभी-कभी बिजली चमकती, तो चारो ओर आसपास खडे काले-काले देवदार कुछ क्षण को चमककर बुझ जाते सिहरकर उसने शाल और भीच लिया—"चार दिन से यही हाल है।"

"तिस पर बिजली भी ठप्प " बडे ने हाँ मे-हाँ मिलायी।

फिर काफी देर कमरे मे चुप्पी रही सिर्फ कभी-कभार तेज झोको मे लालटेन काँपती, तो परछाइयाँ फडफडाने लगती।

"यह छोटा कहाँ रह गया ?" उसे अचानक छोटे की फिक्र हुई, उसकी परछाइ का कोना खाली था, कभी बडे का हाथ कबूतर के आकार मे उधर मँडरा जाता, या उसके शाल का कोना

"कही बेवकूफ भीतर तो नही चला गया कमरे के ?"

"तमाचा खायेगा गधा!" बडे ने सिर झुका लिया।

"तुझे क्या, उसे चाहे वे दोनो नोच डालें!" बडे के अनमनेपन से वह चिढ गयी।

"भेजा तो तूने ही, बडे ने बडी आसानी से सारा दारोमदार उसी पर डाल दिया।

"हाँ-हाँ, जैसे तुझे तो उधर से कोई मतलब ही नही। झूठा। बेईमान।" उसकी आँखें भर आयी।

"अब उनका गुस्सा हम पर क्या उतारती है बेवकूफ!" बडा कुछ खिसिया-सा भी गया—"आ जायेगा ले, आ ही गया।"

छोटा भुका भुका दबे पाव गैलरी मे आ रहा था   चोरा की तरह

'क्या   क्या हाल है ?" उत्सुकता और उत्तेजना से वह हक्लाने लगी।

"अरे छोड ना !" आन्जि से छोटे ने हाथ छुडा लिया, "बस क्या होगा ! मा बैठी रो रही है और बाबा ऐसा मुह बनाये लेट है   " उसने कुप्पा सा मुँह फुलाया।

'कर क्या रहे है ?" बडा पूछा।

"करेंगे क्या ! लेटे हैं।" छोटा अपनी विशिष्टता का एहसास पाकर अकड रहा था, 'छत ताक रहे है भकुओ की तरह।"

"एइ डिष्ट !" उसने धमकाया, पर छोटे की उपमा स बडा और वह हँसने लगे।

"लग तो रह हैं वैस ही," छोटा हँसी का समथन पाकर कुछ-कुछ उद्दण्ड हो चला था "शायद सोचते है कि   कि वो बडे ग्रेट लग रह हैं।'

' हिटलर जैस !"

खि खि खि —तीनो हँसने लगे दबे दबे।

ढम —फिर आवाज आयी ज्या कुछ गिरा हो। उसने कातर होकर बडे को ताका, बडे न आखें झुका ली।

"फिर ?"

"शायद कोई टहनी टूटी हो !' छोटे ने सान्त्वना दी। फौरन तीनो ने यही कारण स्वीकार कर लिया।

"सो तो है ही" उसने सिर हिलाया, "ऐसी बफ, रामसिंह चौकीदार कहता था बहुत कम पडती है। बडे बडे पेड तक उखड जाते है आधी मे। घरो के टीन उड उडकर राह चलता का घायल कर दते हैं   "

भयानक चित्र से आक्रान्त तीनो कुछ देर चुप रह। छोटे ने मौन तोडा, ' दातादीन कहता था अब कुहरा छँट रहा है कल तक गिरना रक जायगा।"

"शायद" बडे ने आग कुरेदने की व्यथता से खिन्न होकर तिनका दूर फेंक दिया ' इससे ज्यादा पडेगी भी क्या ? चार दिन तो हो गय रव

रुककर गिरते।"

"एकदम सब ढक गया है, सीढ़ियाँ तक!" उसने खिन्नता से शाल झटकारा।

"अच्छा तो अगर कल तक बर्फ गिरना रुक जाये, तो खूब धूप आयेगी ना?" छोटे ने एक शोले को कुरेदा।

"जरूर!" बड़े ने उँगलियों की राख फूँकी, "पर गधे, तू उस धूप में करेगा क्या?"

"क्यों ऽ ?" छोटा चमका। लगता था वह बड़े को नोच लेगा, उसकी छाया भी तैश में डोलकर घूमी।

हह, पैर तो बर्फ में धँस जायेंगे, खेलेगा क्या बाहर, खाक!" बड़े को तिल तिलकर छोटे के धूप भरे कल्पना महल तोड़ना अच्छा लग रहा था।

"जो भी है, कम-से कम धूप से कुछ गरमाहट तो होगी ही!" छोटा हार मानने को कतई तैयार न था।

उसने एक बार सोचा कि झगड़े में हस्तक्षेप करे, पर जाने कैसी अवश-सी करनेवाली थकान बदन में भर गयी थी। उसने दुखता सिर घुटनों में छिपा लिया। बर्फ खूब गिर रही थी।

बड़े ने टाँगें पसारकर पीठ के पीछे कुशन लगा लिया।

"उस धूप से गर्मी थोड़े ही आयेगी पागल! एक तो बर्फ ऊपर से गिरेगा पाला बस ऐसी कड़ाके की सर्दी पड़ेगी कि धूप में बैठना क्या, सूरज से भी चिपक जायेगा तो भी गरमाहट नहीं आयेगी, समझा? बर्फ गिरकर धूप निकल भी आये, तो कुछ फर्क नहीं पड़ता। सब वैसा ही ठण्डा और जमा हुआ रहेगा।"

काँपती लौ में बड़े की कुबड़ी परछाईं और भी दैत्याकार लग रही थी।

"और उस पर कहीं फिर बर्फ पड़ गयी तो बस छुट्टी।" बड़ा क्रूरता से हँसा।

छोटा रुआँसा होकर चुप हो गया।

दूसरे कमरे में अब बिलकुल शान्ति थी कल तक शायद कुछ कुछ

ठीक-ठाक भी उँह। उकताकर उसने फिर सिर घुटनों में दे दिया।

"अब चुपचाप है!" बड़ा भेदभरे स्वर में फुसफुसाया।

"उँह, होगे!" उसने उपेक्षा से मुँह फेर लिया मन तो करता था कि उस कमरे में आँधी की तरह घुसकर उन्हें उन्हें उँह उस उनसे क्या करना, हफ्ते भर के बाद तो स्कूल खुल ही जायेंगे। बड़ा कुछ अप्रतिभ-सा हो गया था। अब वह छोटे की ओर मुड़ा—"कल को शायद फिर से मुर्गा पकेगा।"

बड़े और छोटे ने भेदभरी हँसी से उसे ताका—वह प्रतिमा सी निश्चल बैठी रही। हालाँकि उसे पता था कि उसे हँसना चाहिए था यह उनका पुराना विद्रूप था। ऐसे भारी साप्ताहिक झगड़े के बाद जब उनके माँ-बाप में सुलह होती, तो निशानी यही थी। माँ खुद बैठकर उम्दा मुर्गा पकाती, पापा का गिलास भी खुद ही भरती और एक हिस्टीरिकल डर से मुक्त तीनों भाई-बहन पुराने पारिवारिक मजाकों पर बेवजह जोरों से ठहाके लगाते

पर बड़े का विद्रूप उसे आज पता नहीं क्यों नहीं गुदगुदा पा रहा था जाने लालटेन की पीली रोशनी में ही कुछ था या छोटे की दुबली कलाई की भद्दी परछाईं में कि वह न हँसी, न मुसकरायी। बस चुपचाप घुटनों में सिर दिये रही, जैसे जम गयी हो।

अँधेरे से अँधेरे तक

चश्मा मेज पर रखकर मनोहर ने आखें बन्द कर ली।

खदकते पतीले के ढकने की तरह कमरा उबलती चुप्पी म धीमे धीमे काँप रहा था। मनोहर ने थके हुए बदन को ढीला छोड दिया। कमरा अब उसे लिये दिये चुपचाप रेंगने लगा था। अण्डे सेती मुर्गी की तरह तनिक हिलकर उसने अपने बदन का आकार विस्तरे की नमाई मे फिट किया, जैसे लम्बी यात्रा की शुरुआत मे सीट पर जम रहा हो। कमरे की गति धीरे-धीरे बढने लगी थी। रेलगाडी के बराबर चलते जगल की तरह अँधेरा कुछ देर उसकी बगल-बगल दौडता रहा, फिर वह जगल खुल गया और उसने एक भूरी फुर्ती से ऊपर नीचे होती एक चिटखी सूखी जमीन को साथ चलते पाया। खेतो पर की फसल कब की कट चुकी थी। बस जडात दुबले बदन पर खडे रोगटो की तरह छोटे छोटे सूखे डण्ठल भर खडे थे। घरो के पिघलाते से ढूहनुमा आकार, दुबली चिमकती पगडण्डिया, नील धुए मे तैरते-से मानव-आकार

मनोहर ने झटके स सिर उठाया। अँधेरे के जाल को काटती-काटती फोन की किर्राती घण्टी वही बजने लगी थी। एक उसास से वह उठँग गया। बत्ती जला ले क्या ? दीवार क परे बुढिया मिली स्मिथ फोन पर किसी से ऊँची आवाज मे बतियाने लगी थी। अच्छा, क्या बहरे लोग सचमुच दूसरो को भी बहरा ही समझते होगे ? वह हँसने लगा। यही तो उसकी कमजोरी

है। ऐन मौके पर कोई अप्रासंगिक बात काली बिल्ली की तरह सामने छूट भागती है। उसका पेट गुड़गुड़ाने लगा था। अचानक उसे याद आया कि आफिस से लौटकर उसने कुछ खाया तक नहीं है। भूखे पेट में गैसें उथल पुथल होने लगी थीं। बत्ती जलाकर वह कुछ-कुछ लँगड़ाता हुआ रसोई में घुस गया। घुटने का पुराना फ्रैक्चर फिर परेशान करने लगा है। उम्र का तकाजा, बाबूजी कहते। उम्र की एक सीमा पार कर लेने के बाद दूसरों को उनकी ढलती उम्र का खयाल दिलाना शायद कुछ विचित्र-सी तसल्ली देता है।

मनोहर ने कलाई पर नजर डाली। कुल साढ़े सात बजे थे, पर बाहर अँधेरा देखकर लगता था कि दसेक बजे होंगे। बाहर तीखी हवा बिल्डिंग की पुख्ता दीवारों से टकराती, पेड़ों-पत्तों को चीथती हुहुआय जा रही थी। बिल्डिंग की सब खिड़कियाँ कसकर बन्द थीं, पर्दे खिंचे हुए। कहीं-कहीं सन्धियों से छनकर भीतर रोशनी की एक महीन कोर-सी झलक जाती थी बस। बाहर बर्फीली हवा की निपट शब्दहीन अमानुषिक सीत्कार। कितने तीखेपन से जाड़े की रातों में ढलती उम्र का खयाल आता-जाता है।

पार्कों, सड़कों, बसों पर रोज देखे हजारों चेहरे। बूढ़े आकार, पुरानी बेंचों पर हताश भीगे कौओं की तरह पांत में बैठे हुए। अँधेरी खिड़कियों से दृष्टिहीन सूनेपन में ताकते झुर्रीदार चेहरे, काँपती चाभियों से धुँधले ताले तलाशते दुबले निस्सहाय हाथ। जितनी बार वह कूड़े का लिफाफा फेंकने जाता है बुढ़िया स्मिथ को छिपकर ताकते पाता है। पहले पर्दे के पीछे से एक झुर्रीदार हाथ गोजर की तरह रेंगता आता है, फिर मोटे चश्मे के पीछे और भी बड़ौल और निष्प्रभ लगती मोतियाबिन्दी आँखें। क्या करती होगी वह सारे दिन ? तीन साल से वह यहाँ रह रहा है। और तीन साल से वह उसे इसी तरह देख रहा है। सिर्फ एक बार उस रोज उसकी आवाज सुनी थी, जब वह डैस्क क्लर्क से अपना अखबार लेने खड़ा था और अपनी पतली चीखती बुढ़ाई आवाज में मिसेज स्मिथ भीतर के कमरे में मनेजर से कुछ शिकायत कर रही थी। शायद वह अपने फ्लैट के ऊपर रहनेवाले इतालवी परिवार के बारे में कुछ कह रही थी—'रात भर धमाधम, बच्चों की भाग दौड़, कोई सोये भी तो कैसे! हमने भी पूरा किराया दिया है है कि

नही ?"

वह अखबार लेकर मुड ही रहा था कि अपनी लाठी टेकती बुढिया भी मैनेजर के कमरे से निकली। मनोहर को देखकर साप की तरह वह फुफकारी थी—"दीज डर्टी फौरेनस।" मनोहर का मन हुआ था कि उसकी लाठी छीनकर छितरे सफेद बालो से दीखती उसकी गुलाबी गजी चाद पर दे मारे। पर फिर दुमकटी छिपकली की तरह लाठी के बल रेंगती बुढिया लिफ्ट म बुदबुदाती घुस गयी थी और दरवाजा बन्द हो गया था—भव।

डबलरोटी के दो टुकडो के बीच खीरे की कतली दबाता मनोहर फिर हँसने लगा। अब सोचता है, तो लगता है कि उस पर गुस्सा करने मे कोई तुक ही नही थी। पर फिर भी। सैडविच कुतरते कुतरते वह मय जूतो के पलग पर लेट गया। बहुत दिन से उसके बाप की चिट्ठी भी नही आयी। खैर आयेगी, जरूर आयगी। अढाई सौ पेंशन पर रिटायर हुए अपने बाप की कामधेनु जो है वह। उसे नही, तो क्या अपनी तीन ठो बेटियो को लिखेंगे, जिन्होने पहले अपने दहेज और फिर अपनी सालाना जचगियो की माफत उन्हे गाय की तरह दुह लिया था! चिट्ठी की बात से याद आया, इस बार उन्होने कुछ ब्लेड मँगवाये हैं। अब अगले पासल मे भेज देगा, हालाँकि पिछली बार उनका वह पाइप का फारमाइशी तम्बाकू और गम मोनी जो भेजे थे, उनकी पहुँच अभी तक नही आयी। मालूम नहीं, मिले भी कि रास्ते म ही कही—क्या ठिकाना!

उसके आफिस के एकमात्र हिन्दुस्तानी क्लर्क के सरदार हरविन्दर की सरदारनी का कहना है कि यहाँ का कुछ ठिकाना नही। "क्तई नही जी, जिस मुल्क मे आदमी आदमी से बात ना करे, उसकी भली चलायी। ते खरीद फरोख्त करन जाओ, तो चुपचाप शापिंग काट म सामान रखो, चुपचाप पैसा दे के बाहर चले आओ। छुट्टी हुई। अपने मुलक मे, पाई जी, कुजड़े बनिये से तकरार ही चाहे होती हो, बात तो हो जाती थी, है कि नहीं ?"

'है कि नही ?' मनोहर ने अँधेरे से पूछा। पर अँधेरा थोड़ी चुप्पी मे स्थिर बैठा रहा। इधर अक्सर वह अपने को अँधेरे मे अपने आपसे बोलता पाता है। शुरू-शुरू म पार्क म बैठी बुदबुदाती बुढिया या अकेले कार चलाते

लोगो को अपने-आपसे बोलते देखकर उसे बडा कौतुक होता था, पता नहीं कब उसने खुद भी

सरदारनी का बूढा झुर्रीदार चेहरा डबडबा आया था—"दिन भर अपारटमेण्ट की खिडकिया पर बैठे बैठे अन्तजार करो कि दार जी आये कि नही। कभी बरफ पडन लगी, तो घुक घुक होनी की ट्रैफिक नाल तो कुछ नही हो गया। सात साल हो गय जी इत्थे रहते रहते, पर पडोसियो नाल हलो शलो छड के बात ही नी होणी। उन्हें आफिस जाणा ते बच्चे बेबीसिटर के घर। ते जैसे यहा के अमरीकी तैस अपने हिन्दोस्तानी। मैं तो कहँदी कि चलो जी बहुत हुआ अब, लौट चलो "

"लौट तो चलेंगे," सरदारजी अपना मजबूत स्याह पजा चिमगादड के परो की तरह फैलाते हैं ते कल ही चलो, मैं भी वखुशी लौट चलू पर बच्चो का भी सोचा है?"

जापानी नायलौन की साडी की कोर से आँसू का कतरा पोछकर सरदारनीजी गहरी उसास लेती हैं—'रब्ब दी मरजी अब पडे हैं सो पडे हैं।''

"पाई जी, ये बात ये लेडीज समझती नही, पर आप ही कहो " मनोहर के चेहरे से विस्की और लहसुन की गध टकराती है—"पहले पहल आये थे, तो सोचा, चलो लडकियो की शादी लैक पैसा हो जाये, तो लौट चलेंगे। फेर उनकी शादिया कर दो, त सोचा कि दिल्ली मे घर बणवा लें, सिर छिपाने का आसरा तो हो जाय सो भी बणवाया। अब जाने की सोचने लगे थे, के वहा से बच्चे हमे लिखते हैं, हम तुम वहा अपन पास बुला लो हमारे इस गरीब देश म तो न तरक्की का चानस है न पसा। अब आप ही बोलो जी के हम उत्थे जायें, कि उन्हे एदर लगवा दें? अपणा क्या है पाँच दसेक साल की बात है, सो कट ही जायेंगे, पर उनकी तो लाइफ का स्वाल है।"

बोलो!' मनोहर ने अँधेरे से कहा। अँधेरा नहा बोला। बोलना भी क्या था!

मनोहर ने आँखें खोल ली। हाथ मे बचा सैण्डविच का टुकडा चसझझसा गया था। उठकर उसने वह टुकडा कूडेदानी मे फेंक दिया और हाथ धोने लगा। शुरू-शुरू म कुछ दिन बहुत चाव से उसने भी इधर-उधर से हिंदुस्तानी मसाले खरीदे थे—तल भूनकर अन्दाजन खाना भी अपनी तरह का पकाने की कोशिश की थी पर अब उसमे भी कोई तुक नही मालूम पडती।

तुक मालूम ही किसम पडती है ? उसने बाथरूम के शीशे मे अपना अधेड होता चेहरा देखा। खरियत है, इस हफ्ते किसी पार्टी मे नही जाना है, वरना शाम को भी दाढी बनानी पडती। यू वह खास किसी से मिलता-जुलता भी नही। जब बहुत ही जरूरी हो जाये, तभी जाता है, पर एक बार जाकर दो हफ्ते को साला मुह बदजायका हो जाता है। रेशमी सोफे, रेशमी पर्दे, हिंदुस्तानी तसवीरें, फूलदान, बातिक, मधुबनी जैसे साले घर नही, म्यूजियम हैं। मद्रासी सिल्क और चमकीले स्याह भारी जूडावाली गदराई सम्पन्न गहिणिया पके केले के गुच्छे की तरह सटी सटी बैठी हुई। लगता है, पुतला के महल मे घुस आय हा। पार्टी ? हुँह ! काख के अधपके फोडे की तरह मनोहर का अकेलापन फिर टीसता है। वह गदन इधर-उधर घुमाकर तलाश रहा है। बमन और वैस्टन करोडो डालर की किसी हिंदुस्तानी प्रोजेक्ट की चचा म सहज व्यस्त है। अपर्णा गिल हन्ना का हाथ से मुर्गा खाना सिखा रही ह, ९नन मेहता किसी को न्यूयाक की उस दूकान का पता दे रही है, जहा स वह हिंदुस्तान जाकर इस्तेमाल करने के लिए बिजली के उपकरण सस्ते दामा पर खरीदती है—'वक्यूम क्लीनर जरूर ले जाना भाई, उसके बिना कार्पेट साफ नही होते। और कुकिंग रेंज गैस की बेहतर ''

अनतराशी दाढी की तरह व्हिस्की और फ्रेंच इत्र की गन्ध मनोहर का चेहरा छूती है—"क्या हाल है ?" अपना लम्बा सलीकेदार गाउन और मोतिया की माला सँभालती फैनी उसके बगल मे फश पर बैठ गयी है। मनोहर बुदबुदाकर शिष्टाचार की बातें करता है, पर फैनी अपनी रौ मे बोलती ही जा रही है—"फिर वहाँ से हम गये खजुराहो। ऐसा बुरा सफर

कभी नहा किया, पर आऽऽह मन्दिर जो देखे, तो आँखें खुल गयी। मानना पडेगा तुम लोगों मे पुरखे काफी गुरु लोग थे, हर मुआमले म, ही ही-ही।' नशा भरी हँसी म जेली की तरह थल-थल होती हुई फैली।

'क्या बक रही है ?" मेजवान की सुन्दर पत्नी उसस धीरे स पूछती है।

'आजकल बहुत पीने लगी है। क्या करे, न घर न परिवार, उस पर उम्र भी ढल चली है। कल फोन पर रो रोकर माफी माँगगी।"

लो थोडा पुलाव और लो, खास हमारे हिन्दुस्तानी पटना के बासमती है ''

मनोहर आज्ञाकारिता स प्लेट भर लता है।

ऊपर के फ्लैट मे किसी ने जोरो से नीग्रो सोल म्यूजिक का रेकाड लगा रखा है—'ओऽ ऊऽ ह माइ बेहबीइ ' छटपटाती घुटी आवाज अँधेरे को और भी कातर और असह्य बनाती हुई। कल फिर बेलचे से बफ हटाकर कार निकालनी पडेगी—मनोहर ने उकताकर सोचा। बफ ! बफ ! बफ ! साला मौसम है कि अचानक वह रुक गया। उसे याद आया, गर्मियो मे मूज के पलग से पीठ की घमोरियाँ खुजाते बाबूजी भी रात भर बडबडाते रहते थे—'फिर वही लू, लू, लू साली गर्मी है कि 'किससे लडता होगा आदमी ? खुद से, कि मौसम से ?

क्या करे फिर वह ? चित लेटकर मनोहर ने अँधेरी छत पर आँखें टिका दी। क्या करे फिर वह ? क्या वापस लौट जाय ? पर कहाँ ? उस घर मे, जहाँ एक बरसाती पर का अपना कमरा और गुसल छोडकर सारा घर बाबूजी ने किराये पर उठा रखा है ? परिवार ? उसकी सदा सहमी घबरायी थकी भाइदार शादीशुदा बहनें, जिनके बाबूजी स लेकर ससुराल तक फैले अस्तित्व म कही बहुत सहज भाव स एक आदर भरा कोना उसके लिए सुरक्षित था, जो उतना ही चुप्पा और मनहूस था जितना उसका यह अँधेरा कमरा। बँधे दस्तूर की तरह हर बार उसक देश लौटने पर उसकी बहनें अपनी रक्सीन मढी अटचियो से निकाल निकालकर मुसकराती षोडशियो की तसवीरें गुलदस्ते की तरह चुपचाप उसके आग फैला देती हैं, और उसके बाबूजी अपने हर पेंशनयाफ्ता मित्र को उसकी तनख्वाह साढे

सात रुपये से गुणा करके बताने को निकल जाते हैं और वह चुपचाप साथ लायी कोई पेपरबैक किताब पढने का नाटय करता पर्दे दीवारो के पीछे की फुसफुसाहटें सुनता-अनसुनता लेटा रह जाता है। अकेले। चुप।

उसकी बहना के बच्चे नये खिलौने एक-दूसरे को दिखा रहे हैं बहनें अपनी साडिया—"बहुत देता है भाग्य है, सोने के मुलक की नौकरी यहा क्या मन लगगा हाँ, दाने दाने को तो अब तोड मत डालना अभी लड लड के टुम, फिर मामाजी अगले साल नही लायेंगे समझे "

'फोटो दिखायी ? कुछ कहा ? क्या पता, वही कोई कर ली "

दबी हँसी फिर बाबूजी के जूतो की आवाज आती है और बातचीत दब जाती है।

"चाय बनाकर दी उसको ? महाराजिन से कहना मुझसे टीन की पत्ती ले जायेगी, चूरावाली ने बनाये " ढलती शाम नश्तर की तरह दुखते अकेलेपन को छू रही है।

मनोहर खिडकी के बाहर झाँकता है। परिचित खुशबुएँ आवाज, ध्वनिया, गली म खेलते बच्चो की किलकती चीखें। गजक का एक ठेला गुजरता है। भभकती किरासन की धुएँदार कुप्पी। उसके गले मे मछली का काटा सा कुछ फँसता जाता है। बाबूजी बार-बार उसे आगाह कर गये है कि वह कतई यह सब 'डर्टी स्ट्रीट फूड' न चखे। वहाँ के साफ-सुथरे कीटाणु रहित खाने के बाद इसे खाना तो हैपेटाइटिस न्योतना है। सक्सेना बाबू बता रहे थे कि अक्सर य लोग सडक पर गिरी गजक भी बीनकर बेच देते है। वहा से हिंदुस्तान आते वक्त गामा ग्लोब्यूलीन का इंजेक्शन तो मनोहर ने ले ही लिया होगा। अपनी हैल्थ का खयाल करना अमरीकी ही जानता है

कुछ देर दोनो चुप बठे रहते हैं। उसकी बहन दो प्यालो मे चाय रख-कर चुपचाप चली गयी है।

'पी लो पी ला ठण्डी हो जायगी।" बाबूजी कहते हैं और अपने प्याले से चुस्की लेते हैं—' अच्छी चाय बहत महँगी होती जा रही है।" वे बतात हैं फिर कुछ रुककर जोडते हैं—' क्या नही महँगा हो रहा है! लूट

मची है लूट !" वह सहमति म सिर हिलाता है। कुछ कहना भी है शायद। भीतर एसा खालीपन भर गया है कि लगता है, किसी ने छुरी से छील छील कर चेतना का आखिरी टुकडा तक निकाल लिया हो।

हमने सोचा है " बाबूजी जुमले को वजनदार बनाने के लिए क्षण भर,को रुकते ह जब भी उन्ह कोई खास अनाउसमेण्ट करना होता है व यही टकनीक इस्तेमाल करते है। बचपन से उसे याद है। विषय चाहे उसकी पढाई हो या उसकी बहनो की शादी।

'हमने सोचा है ' व कहते हैं, "कि घर म एक विंग और निकलवा लेते हैं। घोषाल बाबू का कहना है कि एरिया म किराये भी बढ़ रहे हैं, और किरायदारो की तो कोई कमी नहीं। फिर परिवार की चीज है, अन्त म परिवार के ही काम आयगी कभी न-कभी।"

कभी न-कभी—वह चुपचाप मन मे दुहराता है। प्याले म उसकी चाय ठण्डी हो गयी है। वह एक सास मे निगल जाता है। "ठण्डी हो गयी होगी, दूसरा प्याला मँगवाऊँ ?" बाबूजी पूछते हैं। वह मना कर देता है और फिर बाबूजी उस एस्टीमेट का ब्यौरा दन लगते हैं।

उठकर जाते हुए बाबूजी क्षण भर को दहलीज पर रुकते हैं—"हाँ, तुम्हारी एक चिट्ठी आयी है।" एक क्षण लिफाफा उसके पोरो के पास रुका रहता है फिर वह थाम लेता है। बाबूजी के चेहरे पर एक बहुत थियेटरी समझदारी का *'हम मालूम-है-बेटा पर-खैर' वाला भाव है। उसका मन होता* है कि वह लिफाफा खोलकर फटी धोती की तरह उनके सामने फैला दे कि देख लो, क्या लिखा है, पर इससे पेश्तर वे मुड चुके होते हैं।

"प्रायवसी बहुत बडी चीज है नमदा बाबू " वे पाइप जलाकर छत पर बैठे अपने दोस्तो क समूह मे कहते हैं। जब से वह विदेश गया है उन्होंने पान सिगरेट छोडकर विदेशी तम्बाकू पाइप मे भरकर पीना चालू कर दिया है। "बडी डर्टी नटिव हैबिट है पान खाना " व उसकी बडी बहन स कहग— 'बस बकरे की तरह चाबा और पिच्च से थूक दिया।" और उसकी *बहन बच्चे का कूल्हा थपकाती सहमति मे सर हिला देगी—"सो तो है।'*

कैरिन कहती थी कि उसके मनोविश्लेषक की राय मे उसका अँधेरे से लगाव उसके डरावने और अकेले बचपन की निशानी है। उजाला होना शुरू हुआ नही कि वह पर्दे खीचने लगती है। उसका कहना था कि उजाले मे वह बेहद उघडा और असहाय महसूस करती है।

"तुम और तुम्हारी अमरीकी पेचीदगियाँ !" वह उसे चिढाता था—"तुम साले बस चले, तो मनोविश्लेषक के सोफे पर ही जागा, सोओ और उम्र निकाल दो।" कैरिन कुछ नही कहती। चुपचाप मुसकराती सिगरेट पीती रहती है। उसका पियक्कड बाप वह सात साल की थी, तभी घर छोडकर निकल गया था और फिर लौटा नही।

"जानते हो, मैंने और मेरे भाई ने क्या किया ? मैं तब सात की थी, टामी छह का। हम दोनो चुपचाप पिछवाडे से बगल के ड्रग स्टोर मे गये और अपनी जमा-पूजी खर्च कर दो बडे बडे आइसक्रीम मँगवाये, उस पियक्कड से छुटकारा पाने की खुशी मे। कमीना सूरज जगने के साथ पीना चालू कर देता था, फिर नाली मे गिरने तक वही। मेरी माँ अपने आशिको के समूह मे मस्त रहती थी। डेरीवाला, लाण्ड्रीवाला, कचडा जमा करनेवाली ट्रक का ड्राइवर—सभी। टामी और मैं गली से गुजरते, तो बुढियें हमे देखकर ऐसे जुबान चटखारती, जैसे हम राक्षसो की औलाद हो। यू हमे अपनी मा के इन मिलनेवालो से कोई गिला नही था, क्योकि हर बार वे हमे मुट्ठी-भर रेजगारी देकर आइसक्रीम खाने भेज देते। लाण्ड्रीवाला तो अपने कान हिलाकर हमे खूब हँसाता भी था।"

बाद को उसकी माँ ने उन्ही मे से किसी एक से शादी भी कर ली थी और अपने झबरे कुत्ते की जडाऊ चेन थामे सुनहरे बालो का विग लगाये कभी-कभार आकर करिन को देख जाती थी। उसके जाते ही कैरिन उसके अपार्टमेण्ट मे तूफान की तरह आ घुसती—"आज बुढिया का कुत्ता फिर मेरे पाम पर पेशाब कर गया। अगली बार कमबख्त ने टाँग उठायी, तो उसे खिडकी से बाहर फेंक दूगी।"

मनोहर की अधपियी सिगरट से वह गहरा कश लेती—"क्या कहने आयी थी ? वही रोने का रोना गाना। मेरा सौतेला बाप एक वेट्रेस के पीछे भाग रहा है—टामी के डाक्टर का कहना है कि अभी दो साल उपचार

और चलेगा—उसने सेल म आधे दाम मे फर का कोट खरीदा है—उसके गुर्दे का दद फिर बढ गया है। कमबख्त, मुह बदजायका कर जाती है। फिर भी मैं कुछ कहती क्या नही ? सच पूछो मनाहर, तो उसम बालने की भी इच्छा नही होती। पिछले इक्कीस साल हम दोना बनरह जूझे हैं, पर अब पता नही क्या गुस्सा भी मुझे उसस जुडा नही पाता। एक उम्र पर पहुँचकर न चोट पहुचाने की इच्छा रह जाती है न चोट खाने की। शायद बुढ़ापे की पहली निशानी है, क्या ?" वह मुसकराती है। शायद रानी, तो मनाहर इतना असहज नही महसूस करता।

कैरिन की चिट्ठी मरी चिड़िया की तरह उसकी किताब क नीचे हवा मे फडफडाती है। उसके सौतेले बाप न फान किया था कि उसकी माँ को मानसिक अस्पताल मे दाखिल कराना पडा है। रेजर स कान तक गला चीर कर आत्महत्या की कोशिश की थी उसने। "उसने सोचा कि शायद मैं उसे जाकर देखना चाहूँगी, इसलिए वह रहा था अभी कुछ दिन न जाऊँ, अभी बहुत बुरी हालत मे है घाव मे छप्पन टाँके लगे हैं। पर मैं तो खुद ही नही जानती कि मैं जाना भी चाहती हूँ या नही। क्या पूछूगी उसस वहाँ जाकर ? कि कितना खून निकला ? मुझे तो लगता है कि उसने गला इतना ही काटा होगा कि शोहरत हो जाये, पर दम न निकले तबीयत काफी उकता गयी है इस सबसे। सोच रही हूँ, नौकरी छोडकर कुछ महीने यूरोप चली जाऊँ। हैजा-चेचक और गर्मी का डर न होता, तो शायद एक चक्कर हिंदुस्तान का भी लगा लेती। तुमने क्या निश्चय किया ? वापस लौट रहे हो कि वही घर-गृहस्थी जमाकर एकदम से फमिली मैन ?"

बाबूजी इधर बीच-बीच मे विलायत देख सकने की अपनी इच्छा की चर्चा कर देते है। निमला जिज्जी सकुचाते हुए फिर जिक्र छेडती है— त्रिपाठीजी फिर आये थे पूछने को। बडी अच्छी लडकी है। खूब गोरी लम्बी मोटर भी चला लेती है। अंग्रेजी स्कूल की पढी है। वहाँ काम आयगा यह सब। उसके तो भाग खुल जायेंगे। तुम्हारे ही जवाब को रुके हैं।'

मनोहर ने आँखें खोल ली। नल का वाशर खराब हो गया है शायद। टप।

टप। टप। लगातार पानी गिर रहा है। हर रोज सोचता है, ईस्व क्लर्क से कहेगा, पर फिर एकदम दिमाग से उतर जाता है। करिन होती तो कहता—याद दिला द। करिन के जाने के बाद से बिल्डिंग भी ता जाने क्या अपरिचित-सी लगने लगी है। पता नहीं कहाँ होगी आजकल। बीच-बीच में एक रंगीन पोस्टकार्ड भेज देती है। उस दिन सोफ़े के पीछे उसका एक पुराना स्काफ पड़ा मिला, तो काफी देर अजीब खाली खाली-सा लगता रहा। अजीब बात है। करिन को वह ऐसे मिस कर रहा है। करिन। क्या पता ? नहीं। वह यह आखिरी बेवकूफी नहीं करेगा। वैसे ही क्या कम परेशानियाँ हैं कि ऊपर से यह भावुकता और

अँधेरा कमरा फिर धीरे धीरे हिलने लगा है। कुछ ही देर में जन्नाटे से उसे लिए लिए फिर उसी परिचित दिशा को चल देगा। जाने क्या यह अँधरा कमरा फिर फिर उसे अपने पके शहर की टिमटिमाती बत्तिया के बीच खड़ा कर देता है और शहर हाथ खींचकर उसे उसके बाप के हवाले कर देता है। बरसाती के उस छोटे-से कमरे में वह परिचित गन्धी-आवाजा से घिरा खड़ा है। शहर अपने तमाम कड़वेपन और मुतहा रंगों के साथ जाड़े की धूप की तरह धीरे धीरे उसकी दुखती मज्जा में धँसता जा रहा है। खिड़की के बाहर से वकील साहब की हड्डिहा गाय उसे घूरे की तरह निर्विकार भाव से परखती है। वह गला खँकारता है बाबूजी से कहने के लिए कि मकान का नया हिस्सा किराये पर उठाने की जरूरत नहीं जब वह लौटेगा तो कम-से-कम रहने को एक हिस्सा तो

बाबूजी वर्जिनिया तम्बाकू का खुशबूभरा कश लेते हुए कुर्सी पर पसर चुके हैं—"दरअसल अमरीकी काम भी जम कर करता है और रिलैक्स भी। तभी तो उसका मुल्क इतनी तरक्की पर है। अब हम सोचते हैं कि तुम वहाँ एक घर भी खरीद लो। धीरे धीरे कभी भगवान की इच्छा हुई, तो एक चक्कर हम भी उधर हो आयेंगे।"

दोपहर में मौत

पहले कुछ देर तो उसकी समझ म ही नही आया कि घण्टीवाला बटन कौन सा होगा ? तीना बटन एक स ही आकार के और एक-मे ही चीकट थे। धूप से तपी आखें सिकोडते वह तनिक छाँव मे सरक आया और फिर उसने बटनो को दोबारा गौर से देखा। मैल की पर्तो के नीचे एक बटन पर घण्टी का आकार बना था। दबाने से कही एक कर्कश ध्वनि गूजी टर ।भरभरा कर गिरता एक नल बन्द हुआ—कौन ? दूर दरवाजे के पीछे मे एक नारी कण्ठ। वह कुछ चिढ सा गया। बन्द दरवाजे के परे क्या हर किसी को अपना नाम भर कहकर परिचय दिया जा सकता है ? वह कह भी दे कि उसका नाम जनादन है तो फिर पूछेंग—कौन जनादन ? अजब बेवकूफी भरा सवाल है। वह कोई फेरीवाला भी तो नही कि धन्धे का नाम ही बताकर जवाब पा ले।

चिलकती धूप थी। इधर लम्बी बीमारी से उठने के बाद से धूप मे थोडा चलन से भी सिर चकराने लगता है। उसने रूमाल मे माथा पाछा। वसे सोचो तो घर के बाशिन्दा का क्या दोष ? ग्यारह बजे दुपहर का घुमती वक्त था। इस समय पडोसिया या फेरीवाला के अलावा इन धुधले उनींदे मकाना म झाँकने आता ही कौन होगा ? गनीमत है इस समय घर मे कोई था, वर्ना यह ता वह वक्त है जब अलम घरनियाँ अक्सर दरवाजे पर ताला मारकर घर की धुली धोतिया और घिसी चप्पला से लम हो बाहर मिलने

मिलाने चल देती है। उसने आस पड़ोस के मकानो पर नज़र फिरायी। कामकाजी लोगो के परे होने पर रोज धीमे धीमे यह गहन मायावी लोक इन गलियो, अहातो मे स्वयमेव उग आता है—अलस बुदबुदाती माँओ, धूप में पुराने ऊन की उधडी लच्छियो की तरह पडी बिल्लियो, और भुनगे से भिनकते छोटे छोटे बच्चो का रहस्यमय लोक, जिसे उसने अपनी लम्बी बीमारी के दौरान की पहली मतबे जान पाया था, उन लम्बे छह महीनो के दौरान जब वह अपने नीम अँधेरे कमरे मे बगल की गलियो, कमरो और अहातो से उठती इन अजीब ध्वनियो को सुनता पडा रहता था। दवाई के नशे और बीमारी की कमजोरी के दरम्यान एक बेनाम भ्रूण की तरह तिरता हुआ। न स्त्री न पुरुष, बस एक थकी घिसी देह भर। रोज का वही क्रम था। खसर खसर थके बिवाईदार पैरो को घिसटाती पुरानी चप्पलें, उठती या उठनी देहो के उच्छ्वास जो चटखते जोडो और पुरान अनबूझ दर्दो स फूटते हैं—हाय मरी अम्माऽ! फिर बतकहियाँ जिनके सुर पानी म ऊभचूभ होती बत्तखा की तरह ऊँचे नीचे होते रहते रहस्यमय स्त्री रोग, अफवाहे, अटकलें फिर कर्कश हँसियाँ जिनका क्रूर नपुसक आक्रोश उसके लहू को स्याह कर देता था ख खँ खँ जैसे लकडबग्घे हँसते हैं। तकिये के सहारे उठँगा या दर्द से फटता माथा गँधाते लिहाफ म गुडुप किये वह इस दुनिया को अपनी नाडियो मे निरन्तर रिसता हुआ पाता था। कभी उसे अचरज भी होता था अपनी श्लथ देह के बावजूद रह आये अपने दिमाग के चौकन्नेपन पर। खै खैं खै। एक विकराल हँसी जिसके पीछे कोई आनन्द या उछाह नहीं एक पूरी की पूरी प्रवंचित जाति का इतिहास एक शिरा की तरह धडकता है—नीला गँदला चैतन्य। धप, धप धप।

यही कुछ क्षण होते हैं शायद, जब एक औरत पूरी तरह एक जीव होती है। चैतन्य अन्तर्मुखी, लापरवाह। वह रेवडी या मूगफली या सिर्फ धक्का देकर भी अपने मिनमिनाते बच्चो को इस दम अलग हँकाल सकती है। वह इस वक्त किसी की जिम्मेदार नहीं—न उल्टे सीधे पडे जूतो की न जूठे बरतनो की न मुसे हुए बिस्तरो की। इस वक्त वह सिर्फ दूसरी औरत की आखो म सीधा देखती है, उन अतल गहराइयो मे, जहा उसकी अपनी सबसे अपने अपमान और अपना आक्रोश व्याकुल शेरनी की दहाड गूजते

फिरते हैं। धीमे धीमे सर से सर जोड़े वे अपनी-अपनी नीली गुम चोटों पर से आवरण हटाती हैं। बहुत धीमे धीमे, अपनी जीभ से अपनी पीड़ा को चाटते, चूसते हुए—एक उत्कट क्रोध, एक उत्कट आनन्द में, जैसे घायल जानवर करते हैं।

उस बार बीमारी से ठीक होने पर जब उसके परिचितों ने कहा था कि उसका पुनर्जन्म हुआ है, तो उसे लगा था कि वे पूरी तरह से गलत नहीं थे। पूरे छह महीने उस पाताल नगरी में बिताने के बाद अब वह सिर से पैर तक अपने आपको कतई बदला हुआ पाता था। हालाँकि ऊपर से सब वैसा-का-वैसा ही था, और अब तो बदन भरते जाने से कपड़े भी उतने झूलते-से नहीं प्रतीत होते थे। उसने घड़ी देखी, पाँच मिनट गुजर चुके थे। क्या करे? घण्टी फिर बजाये क्या? नम्बर तो यही था, पर नाम की प्लेट कहीं नहीं थी। इस तिमंजिले मकान में कहाँ होगा रघु का घर? काफी पहले एक बार आया था तो शायद नीचे की ही मंजिल में थे वे लोग। उसे अपनी याददाश्त की कमजोरी पर खीझ हुई। उसने नम्बर फिर पढ़ा—नम्बर तो ठीक ही था। उसने फिर बटन पर उँगली रखी।

इस बार दरवाजा जल्दी खुल गया। एक तरुणी माँ एक हाथ से बच्चे को सटाये खड़ी थी। साड़ी की टेढ़ी मेढ़ी सलों से लगता था कि जल्दी जल्दी ही लपेटी गयी होगी। बच्चा तौलिये में लिपटा ठिठुर रहा था। वह अचकचा गया—"माफ कीजियेगा, आपको तकलीफ दी मैं राघव शर्मा का घर ढूंढ रहा था।"

'नम्बर? नम्बर तो यही है, वो लोग ऊपर की मंजिल में हैं क्या नाम बताया आपने?"

'मेरा? जी जनार्दन मैं राघव का सहपाठी था इधर से जा रहा था तो सोचा—अभी पिछले महीने उसकी चिट्ठी आयी थी कि वह जाड़ों में हिन्दुस्तान आ रहा है, यहीं मिलेगा—पहले तो नीचे की ही मंजिल में थे न?"

स्त्री के चेहरे पर जड़ी आँखें कुछ देर उसे निर्निमेष ताकती रहीं जैसे कुछ पढ़ रही हों। उसे अजब सा लगा, गला खँखारकर उसने बुशर्ट का ऊपरी बटन बेवजह बन्द किया— सॉरी, आपको काम के बीच से "

उसके हाथ न बच्चे की दिशा में एक शिथिल इंगित किया—"पर राघव तो नहीं रहे" स्त्री जैसे उनके पीछे खड़े किसी से कह रही थी। बच्चा चौंका, एक सिहरन उसे कँपा गयी—"कब ? कैसे ?"

स्त्री ने एक व्यस्त अनमनेपन से बच्चे के माथे पर तौलिया रगड़ा—"अभी पन्द्रह एक दिन हुए। हिंदुस्तान आने की बात तो थी, पर उससे हफ्ता भर पहले ही कार का एक्सीडेण्ट हो गया"

"राम राम।"

'हाँ, बुरा तो सभी को लगा, पर क्या किया जाय! ऊपर ही हैं चाचीजी चले जाइए। थोड़ा कम देखती हैं वे। चाचाजी भी आते ही होंगे, गीता सुनने गये थे।' वह फिर बच्चे को रगड़ने लगी थी, बच्चा चोर नजरों से आगन्तुक को देखता हुआ अपने नंगेपन की शर्म और माँ के आघातों के बीच होले होले हिल रहा था। उसे अपनी बीमारी के दौरान पर्दों से उझककर झाँकते चेहरे याद आये। कुतूहल, डर, मसखरी। फिर बच्चे का चेहरा छुप गया। वह उनकी दुनिया का वाशिन्दा नहीं था वह जान गया था। धीमे हाथों से दरवाजा भिड़ाकर वह सीढ़ियों की तरफ मुड़ा। लम्बा जीना बल खाता ऊपर तक चला गया था। सीढ़ियों में महीनों से झाड़ू नहीं लगी थी—धूल भरे बालों के गुच्छे जैसे रेशमी आकार जालों में लटके थे, दीवारें हाथों का सहारा लेते लेते चीकट हो चली थीं, पूरी ऊँचाई में एक भुरभुरी गन्ध व्याप्त थी, उस तकलीफ और हताशा की गन्ध जो न तो फूट कर बहती है, न ही पथराकर विलाती है, पर धीमे धीमे नींवों को गलाती रहती है। लगातार।

एक क्षण वह हाठ भींचे अनिश्चय में नीचे खड़ा रहा, फिर ऊपर चढ़ने लगा। दरवाजा तो खुला हुआ था। छोटा-सा दीवानखाना था, बमुश्किल उन तमाम सस्ते रेक्सीन के सोफों, तिपाइयों, प्लास्टिक के मोढ़ों, फूलों, तसवीरों, पुराने कलेण्डरों को समोता हुआ। कमरे में भी वही झरभुरी धूलिहा गन्ध थी। उसने धीमे से दरवाजे को हाथ से टकोरा। "कौन ?" चप्पल की खसर खसर के साथ घिसटती सी एक महिला भीतर आयी। मोटे चश्मे के पीछे उनकी आँखें विकृत और बेडौल लगती थीं, ज्यों किसी ने गला दाब दिया हो और आँखें बाहर को उछल पड़ी हों। उसने अप्रतिभ हो पैर पर

यजन बदला—राघव नहीं रहे—

"आप कौन ?" महिला की गदन शिथिलता से टेढ़ी हुई जैसे कि उन्हें तकलीफ होती हो किसी भी मानवीय हरकत से। उनके प्रश्न म जिज्ञासा नहीं, एक उलझन सी थी—अब किसलिए ?

"जी, मेरा नाम जनादन है। राघव और मैं होस्टल मे "

"हाँ, बैठिए, य आते होंगे।' उन्होंने कुर्सी की तरफ इशारा किया'। वह बैठ गया। सोफे का स्प्रिंग भयावह रूप स पुराना था—बैठते ही मानो पीठ जमीन से सट गयी हो। उसकी रीढ मे पुरानी टीस उठी, पर इस समय उसको लेकर कुछ करना बिलावजह अभद्रता होती। नहीं ?

'मैं, मुझे तो कुछ पता ही नहीं था अभी नीचे उन्होंने बताया—कब, कैसे ? रघु और केसव तो आनेवाले थे न ?"

"हाँऽ, भाग्य है और क्या !" महिला की मोटी चिबुक मानो गले म और गहरी होकर धँस गयी। जनादन ने पहली बार गौर किया कि शरीर के मोटापे के बावजूद महिला के चेहरे पर बीमारी की अस्वास्थ्यकर झाँइयाँ थी। दोनो आँखों के नीचे स्याह दायरे थे जो चश्मे से नीचे तक उतर आय थे। वे बोली तो उसने देखा सामने के तीन चार दाँत भी गायब थे, मुसे हुए कपड़े, बिवाईदार खुरदरे पाँव, हाथ। कलाइयो मे घिसी हुई-सी काँच की चूड़ियाँ, खुश्क हताश नगी दृष्टि जिसम कोई अपेक्षा नहीं कोई प्रार्थना नहीं। वह सिहर गया।—'आनेवाले तो सभी थे। जेनी भी बच्चे भी, हवाई जहाज मे सीट फीट सब्ब पूरी तैयारी थी—बीच ही मे " कुछ देर चुप्पी रही —"एक्सीडेण्ट हुआ था न ?" उसे अपनी ही आवाज अजीब भाड़े ढग से बेसुरी लगी—'हाँ इन्शोरेंस कम्पनी मे था न ! दिन रात दौरे करने पड़ते थे—इधर सुना कोई पुल बन रहा था—डाइभरसन था सडक पर—उसने दूसरी सडक ले ली, वहीं किसी बस या ट्रक से टक्कर हो गयी—ऐन सामने—बस उसी दम

राम-राम—' वह सिहर गया।' फिर आपको खबर दी होगी—'

जनी का ही फोन आया था '—निष्प्राण आवाज टेपरिकाडर की तरह खबरें भर दे रही थी, बगैर उतार चढाव के— कहने लगी आप आयेंगे क्या ? बचा तो नहीं कुछ भी—फिर हमने कहा क्या करेंगे जाके—पसा

भी तो चाहिए जाने आने को—"

"सो तो है !" उसने कहा।

'वैसे तो रघु ने इस बार लिखा था कि अबके आके हमे भी कुछ दिन का साथ ही ले जायेगा वहा, पर उसकी बात, उसी के साथ गयी। अऽऽब क्या !" एक शान्त शिथिलता से मोटे बेडौल हाथ घुटना पर टिक गये— 'जब अपना लडका ही नही रहा तो अग्रेजा के मुलक में बेगाना की तरह क्याऽऽ जाना—"

'पर जेनी ? बच्चे ?"

जेनी का तो पीहर वहीं का ठैरा। उसके माँ-बाप, सग सँगाती तो सब वही के हुए—" आवाज कहती जा रही थी—"रह गये यहाँ हम जटायु जैसे पखहीन। किस आसरे ? किसलिए होता है ये सब ऐसा ? हैं ? कभी सोचती हूँ जब उसने जेनी के साथ शादी करने की लिखी तो मैंने ही कहा था इससे तो तू पहले ही मर जाता—पर मेरा ये मतलब थोडी ही था— अरे आशीर्वाद भी तो इसी चमडे की जीभ से दिये थे उसे, वो क्या नही फले ! एक कोसना ही क्याकर फल गया ! क्या पूजा, क्या पाठ ! सब्ब बेकार है—"

सर दीवार पर टँगी एक स्विस घडी से एक बेडौल कोयल का सिर निकला—कुक्कू कुक्कू कोयल ने ग्यारह बार कुहुककर ग्यारह बजाये— घडी समय से पीछे थी।

"पिछली दफे आया तो ये घडी और जाने क्या क्या लाया था—अरे ये घडी-वडी क्या मैं तेरी जगह रखूँगी ! बगलवाली कहती थी बडी महँगी चीजें हैं—मैंन कही अरे हमार लिए महँगा क्या, सस्ता क्या !—अरे जवान बेटे का आँख के सामने होना क्या कम बडी चीज होती ! पर हर बार वो जेई कह कि अम्मा, ह्याँ जित्ती कुल तनखा पाऊँगा उससे चारगुनी तो मैं और जेनी बेबी सिट्टर को देते हैं हर माह। पालेंगी, अब वेई बेबी सिट्टर पालेंगी रोजी और राजेस को। जेनी को तो नौकरी स ई फुरसत नई। जब तब नईं छोडी नौकरी, तो अब क्या छोडेगी ?"

"बच्चे आ चुके हैं कभी यहाँ ?"

'यहाँ ?" उन्ह कुछ समय लगा प्रश्न को उत्तर से जोडन मे—' आये

थे दो साल पैले—राजेश तो बहुत ही हिल गया था—जाने को बतई राजी नही था—रघु बोला कि इसे रख लो, यही पढा दो—हम भी आसानी, तुम्हारा भी दिल लगा रहेगा, पर मैंनेई मना कर दिया—"

'क्यो ?" सँभलने से पहले ही उसकी जिज्ञासा छूट भागी थी।

'अरे, बाहर के पले बच्चो को य जगह रास आती क्या ? तुम्ही कहो मा बाप सामने हो तो और ही बात है—पर वैसे कच्चा पानी वो ना पियें, मसाला वो ना खायें, मेरी भाषा वो ना समझें-जानें। मान लो इधर महतारी बाप यहाँ छोडके चले जाते और इधर य बीमार हो जाता तो ? सब येई कहते कि दादी ने देखभाल नही की।" महिला के होठ कुछ देर अपने से ही कुछ बुदबुदाते रहे।

वह चुप रहा। अब चलना चाहिए उसे। उसने गला खँखारा। "अच्छा अब चलूं।"

'जाते है ?" महिला की निष्प्राण आवाज ने प्रश्न दोहराया। 'ये आतेई होग। तभी जीने पर से आवाज आयी। दरवाजा खुला।

'कौन ?" दरवाजे के पीछे से एक वृद्ध सज्जन भीतर आये। हाथ में झोला लिये। पहले मुह बिगाडकर उन्होने दो-तीन डकार लिये, फिर थोला दरवाजे से टिकाकर मुडने को उद्यत हुए। वह उठकर खडा हो गया—'नमस्कार।"

'नमस्ते। बैठिये, आपका गुड नम ?' वृद्ध अपेक्षाकृत चुस्त और छरहरे बदन के थे—उनकी गोरी रगत छोटी छोटी कजाइया आखो और वाचाल दीखते लम्बे पतले होठो म राघव की स्पष्ट छवि थी। लम्बे अर्से से कामकाजी दुनिया से कटकर घर की चारदीवारी म दोपहरें काटनेवाले पुरुषो की निगाहो, मुद्राओं और भाषा म जो एक खास स्त्रियोचित कटाव आ जाता है, उसे उसने महसूस किया—

'जी, मैं जनार्दन हूँ—राघव और मैं होस्टल म एक साथ "

'हाँ हा हाँ। याफकोस। बैठिय—अरे भाई चाय वाय कुछ—बैठिये न।" उनके बातून लहजे म लम्बे अर्से तक अकेले रहे आय रिटायर्ड आदमी का उत्साह था जो कोई भी पुरुष श्रोता मिलने पर उससे चिपक चिपक जाना चाहता है। उसने अव्यवस्थित महसूस किया—महिला अपनी

धीमी धीमी रेंगती गति से भीतर चल दी थी। खाने पीने के स्मरण मात्र से उसे लगा जैसे उसे उबकाई आ जायगी—"जी, चाय वगैरा नहीं!" उसने बेकली स प्रतिवाद किया।

"अरे हम भी इसी बहाने दो चुस्की ले लेंग जी। बैठिये—' वद्ध आराम से सोफे पर पसर चुके द। वह सकुचित हो अपने को कोसता गया—क्या नहीं पहले निकल भागा था ? कुछ देर चुप्पी रही। उसी न कस-मसाकर मौन तोडा—"मुझे राघव के बारे मे पता नही था—आज ही यहीं आकर मालूम हुआ। मुझे तो पिछले महीन ही उसकी चिट्ठी मिली थी कि वे सब आनेवाले हैं—इसी बीच म "

'क्या कहा जाय!" वद्ध ने आँखें मूदकर पपोट सहलाये और लम्ब सुजद वातालाप की अपेक्षा मे चश्मा गोद म डाल दिया— 'यहाँ तो हम सब क्या नाम, इन्तजारी म थे कि मय फैमिली के यहाँ आयेगा—रहेगा—इधर ये खबर आ गयी—मैन प्रपोजेज गाड डिस्पोजेज—" अशुद्ध उच्चारण मे उन्होने जोडा। फिर पुराने फैशन की किताबी अंग्रेजी म उसे बताने लगे कि राघव वहाँ कितना अधिक कमा रहा था और इस कम उम्र म ही कितनी सम्पत्ति जोड चुका था—जो मकान उसन बनाया था क्या नाम, उस बीस हजार डालर मे तो आर्किटेक्ट से लैण्डस्केप ही कराया—नायाब पेड फव्वारे और फूलो के पौधे लगवाकर—क्या नाम, तीन तीन तो कारें ही थी—फिर जेनी के माँ-बाप भी कई चीजें देत रहते थे, कभी कार, कभी सोने चादी के तोहफे। वह भी अच्छी तनखाह पाती थी। ठाठ थे। एण्ड बैस्ट आफ आल,' उन्होने गदेली पर मुक्का मारा, 'दिल से रघु तब भी एक सरल हिन्दोस्तानी ही रहा आया। पिछली बार आया तो वाइफ से बोला—बस अम्मा मेरे लिए तो इण्डियन स्टाइल खाना ही बनाओ। जेनी-बच्चा का बहुत होगा तो बाहर खिला लाऊँगा—कद्दू पूरी कढी, अनरसे। बस यही सब खाने भाते थे उसे—सैंकडा जलेबी, बडे और इडली डोसा के मिक्स के पैकेट साथ ले गया—बाय एयर (हवाई जहाज से)," उन्होंने कुछ रुककर जोडा। फिर बताने लगे कि वैसे उनका दूसरा लडका माधव भी लायक है—अभी इजीनियर हुआ है—और वे तो उससे कहते हैं कि गो वैस्ट यगमैन। (नौजवान! पश्चिम जाओ।) ये लाइफ भी कोई

साइफ़ है, क्या नाम, रोते सिसकते मतारा। म पिसटत हुए दिन काटना। यहाँ दो हजार पाकर भी अधपेट रहोगे—फिर बहन की भी तो शादी करनी है—

मदरग टेढ़ा टँगा पदा हटाकर हताश चाल से सरकती-सी महिला हाथ में दो छलकत गिलास पकड़े चाय ले आयी थी। काफी की एक प्रचलित प्रकार की चीनिया स बने काँच के गिलास थे। उसने चुस्की ली। चाय में मानो इस पूरी दुपहरी का निचोड था—कुनकुना, मदरग और बरबाद। भूरा पानी भर जिसमे शक्कर बस छुला दी गयी थी।

"क्या ऽऽ! अरे ट्रे म लाती यो बाहरवाली—" फिर वे उस बताने लगे कि वह उम्दा ट्रे और मिक्सी, राघव पिछली बार कस लाया था—कस्टम को चकमा देकर! पन्द्रह तो घड़ियाँ ही ले आया था। जानत हो कैसे?' उन्होने पतलून उकसाकर अपने पतले रोंयेदार टखने थपथपाये—"यहाँ बाँधकर! उन्ह बेच बाचकर माधव को स्कूटर खरीदवा गया जाते दम—ऐसी जुगत-खूबी थी उसमें। अरे कुछ खाने-वाले को नहीं है क्या?" अपनी ही पुरुष जात को सहभागी पाकर वृद्ध की आवाज मे फिर एक क्रूर हिकारत आ चली थी। या शायद रोज का ही ढर्रा होगा। निर्विकार चेहरे से महिला फिर लाकर एक तश्तरी रख गयी जिसमे चार छ बेडौल बर्फी के टुकडे पडे थे। अचानक उसे लगा कि यदि गिलास उसने दोबारा होठो से छुलाया भी तो उसे कै आ जायेगी। वह बेकला से उठ खड़ा हुआ—'जी, अब मैं चलूँ! दरअसल कहीं जाना भी है!' वृद्ध कुछ अप्रतिभ हुए—'अरे पर चाय तो तुमने पी नहीं! अच्छा चलो, एक टुकडा मिठाई तो ले लो!' उन्होंने तश्तरी उठायी। उसने मिठाई का एक टुकडा उठा लिया और धड़ाधड सीढ़ियाँ उतर आया—पीछे पीछे वृद्ध धीमे धीमे उतर रहे थे। उस अचानक शम उमड पडी—कैसी अभद्रता स वह उठ भागा, वह भी ऐसी मुलाकात के बाद—'माफ करें, मैं हडबडी मे उठ गया—दरअसल कहीं अपाइण्टमेण्ट है फिर "

'अरे ठीक है भाई!' वृद्ध ने उसके क धे थपथपाये—"इस शहर मे काम-ही-काम है। तुम चले आये यही बहुत हुआ। हाँ एक काम अगर हमारा सको तो—' उ होने कुछ रुककर भेद भरे ढग स जोड़ा।

जी?" अपनी कुछ देर पूव की अभद्रता को धो पोछने को वह दूनी

तत्परता से मुडा ।

"पिछली बार रघु आया था तो एक हाउसिंग सोसायटी में कुछ रुपये डाल गया था अपने नाम एक फ्लैट के लिए—हम सोच रहे थे कि जेनी से लिखवा लें कि वह प्लाट अब माधव के नाम ट्रासफर कर दे। उसे वहां के फ्लैट से क्या करना, रघु होता तो बात और थी—अब तो क्या ही आयेंगे वो लोग इधर—वहां तो उनका घर है ही—"

'जी—"

'तो जरा मालूम कर लेना कि क्या कारवाई करनी होगी उसके लिए। ये काम अभी ही हो जाये तो ठीक है। एक बार फ्लैट बनने लगे तो फिर हजार उज्र उठ खडे होंगे—वैसे जेनी के पास तो भारतीय नागरिकता है भी नहीं।"

"जी, मैं पता करूँगा।"

'हां, बस तो दो तीन औरों से भी कहा है—पर तुम भी जरा, क्या नाम,—"

"जी, अच्छा।" वृद्ध के पीछे होते ही दूर कहीं नारी कण्ठ की खिल-खिलाहट गूंजी खीं खीं खीं। उसने पाया वह कांप रहा था। दर्द हुआ तो उसने मुट्ठी खोली। उसके दायें हाथ की मुट्ठी जाने कब से कसकर भिंची हुई थी—उसने धीमे-से हाथ पसारा। बर्फी का एक बेआकार लोंदा उसके पैरों के पास मिट्टी पर गिरा—लदद। रूमाल निकालकर वह देर तक हथेली पोंछता रहा, पर हैण्डिल पर धरे हाथ की चिपचिपाहट गयी नहीं।

यानी कि एक बात थी

जो होते होते रह गयी। और वैसे देखा जाये तो अब वह बात पुरानी हुई भी। पर तभी मुझे मालूम हुआ कि सूखी जाती नदियों की तलहटी की तरह हम लोगों में भी शायद नमी का कोई कतरा कहीं बचा रह जाता है, शायद उस धार का एक हल्का नम लहरिया आभास, जो कभी इस जगह बहती थी। क्योंकि सच कहती हूँ कि जब पहले पहल पूरे पन्द्रह साल बाद मैंने उसे फिर दरवाजे से भीतर आते देखा, तो क्षण भर को चौदह सौ वोल्ट के करट की तरह मेरे भीतर एक 'ऐसी धड़केदार भक्क!' हो उठी कि मैं भी चौंक गयी। कमाल है! अपने साथ के नीचे मैंने अपनी टांगों को एका एक कुकुरमुत्ते की डण्डियों की तरह एक हास्यास्पद रूप से हल्का और लुज होता महसूस किया, मानो मैं कोई सत्रह बरस की खिलखिल छोकरी होऊँ। गनीमत यही थी कि मैं बैठी थी और इससे बात के जाहिर होने का कोई खतरा नहीं था।

शायद उसके भीतर भी ऐसा ही बुलबुलेदार कुछ घट रहा था, क्योंकि नींद में चलता हुआ सा वह सीधा दरवाजे से उस जगह पर आया, जहाँ मैं बैठी थी और मेरे पास थमककर कुछ देर चुपचाप मुझे ताकता रहा। अब हम दोनों चुपचाप अपने यकीन को तोल रहे थे, जैसा कि प्यार करने से पहले चिड़ियाँ करती हैं। धीरे धीरे एक-दूसरे के चारों ओर मँडराती हुई। जो हो रहा है उसे टोह पाने के लिए पुतलियाँ चौड़ाये हल्के-हल्के

नामालूम तरीके से चहचहाती हुई।

बाहर सड़क का कुतूहलहीन पीला कोलाहल ज्यादा कलफदार कालर की तरह निरंतर फिर रहा था। कभी कोई चिचियाकर लगाया ब्रेक किसी सम्भाव्य हादसे की चौंधभरी फांक अँधेरे में डाल जाता था। बस। चिह चिह् चिह

अंतत उसी ने गला खँखारा, 'कैसी हो?" उसका परिचित सुंदर चेहरा उत्तेजना और सकोच से हल्का सुनहरा हो आया था। ताजे सिके टोस्ट की तरह जायकेदार और कुरकुरा। वह इन पंद्रह सालों के बाद भी तकरीबन वैसा ही रह गया था, जैसा कि हुआ करता था। अपन भरे भरे, कतिपय उत्तेजित लगते होठों और हड्डिहा कुहनियों समेत। बवकूफ-बेवकूफ और प्यारा प्यारा।

"बैठो," मैंने साधिकार कुर्सी उसकी ओर खिसकायी। पहले पहुँचने के कारण उस नीम अँधेरे पर ज्यादह हक मेरा ही था। शायद, बावजूद इसके कि कुर्सी मेज न मेरे थे और न उसके। उनका असली मालिक कोन मे बैठा, हर असली मालिक की तरह बेहद उकताया और उनींदा दीखता हुआ दात मे फँसा कोई जर्रा जीभ से टटोलता बाहर ताक रहा था। फिर उसने एक अपचभरी डकार ली और उठकर उधर चल दिया, जिधर रसाईघर पडता था। वह मोटा था, और उसकी टागें छोटी और पतली थी। पीछे से वह कुछ-कुछ गजा भी हो चला था।

'बहुत अर्से से तुमसे " उसने कहना शुरू किया। मुझे वीरान खण्डहरों की तरह रहस्यमय बनाती मेरी चुप्पी उसे भी औरों की ही तरह आतकित करती है,' बहुत अर्से से " वह कह रहा था।

'जानती हूँ।" मैंने टोक दिया। वह चुप हो गया। शायद मुझे ऐसे नही टोकना चाहिए था। या शायद उसे ऐसे चुप नही होना चाहिए था। या शायद मुझे भी कुछ बोलना चाहिए था। शायद बहुत कुछ नही होना चाहिए था, शायद बहुत कुछ पेट पर हाथ फेरता मालिक तभी झूलने-वाले किवाड़ धकेलता प्रकट होता है, उसकी छोटी छोटी आखें परिचय और जिज्ञासा से कतई खाली हैं। हम दोनो मानो उसके लिए दो भिनभिनाती मक्खियाँ हों।

अब मैं पाती हूँ कि मैं बोल रही हूँ। मेरे भीतर खिंचे उस वीरान सन्नाटे में मेरी अपनी आवाज घुग्घुआ के स्वर की सी मनहूसियत से गूंज रही है 'कितने साल' या कुछ ऐसा ही, और वह मेरा चेहरा, मेरा जिस्म, वस आँखों से टोह जा रहा है। बाल माथा-गाल होंठ गला सीना पेट-पेट-टखने मेरा सब कुछ वह जो पंद्रह साल के वैवाहिक अनुभव से समृद्ध और प्यार करने की दक्षता से पके आड़ू की तरह गदराया हुआ है। मेरे भीतर की गूंज इतनी बढ़ गयी है कि मुझे अपनी बात ही नहीं सुनायी दे रही है। साफ है कि इस जिस्म के सुकून भरे परिचित फैलाव के परे फैला वह गूंजता मनहूस बीहड़ उसकी नजरों से भी कतई ओझल है जहाँ हर औरत की तरह लात खोंचे, धकेले और खदेड़े जाने के बाद भी मैं फिर फिर लौट जाती हूँ, अपने प्यार का कवच महामन्त्र की तरह जपती हुई। सूरज का नाभि की तरह एक भयावह आकर्षण भरा वह शून्य बिन्दु जहाँ उकड़ूँ बैठी मैं मदरसे के बच्चे की तरह हिल हिलकर दिन रात रटती रहती हूँ—सब चलता है सब चलता है सब चलता है। पुरुषों की संगत से हरदम एक दर्जा नीचे बैठने की तकलीफ पतली फाँस की तरह एक चीख बनकर भीतर गड़ गयी है। न निकलती है न दिखती है। पर है। इसे निकालो! इसे निकालो! मेरा पूरा भीतरी बियाबान गूंज रहा है पर मैं सिर्फ बुदबुदाती भर हूँ। पंद्रह साल का निरन्तर अपमान, दाम के आतंक से आतंकित होना बखूबी सिखाता है।

सो काफी संजीदा चेहरा बनाये अब मैं उससे उसके माता पिता, उसके शहर मित्र उसकी नौकरी और पीछे छूटे शहर की परिचित हस्तियों की कुशल पूछने लगती हूँ। वह भी बड़े ध्यान से मुद्रा-व मुग्ध मन हर सवाल का जवाब दे रहा है। सो हम दोनों बखूबी जानते हैं कि यह सारी बात चीत उस असली बात से कतराना है जो पालतू कुत्ते से आज्ञाकारी गुलाबी चादर से जुबान सम्भाले बारी-बारी हम दोनों का मुँह जोह रही है। उसने जिस फुर्ती से मेरे मेल का आमन्त्रण स्वीकार ही नहीं किया बल्कि उसमें बड़ चढ़कर पतरबाजी भी दिखाने लगा है वह यहीं मुझे हताश करता जाता है। मैं चुप्पी में लौट गयी हूँ। वापस। और वही बात जा रहा है अनजाना। एक बड़ा-सा खाली बिन्दु हम दोनों के बीच में टंगा है

जिसमे बचा-बचाकर वह तीर चलाता है और लिस्ट से मिलान कर अपना कुल टोटल गिनता है। पर मूर्ख! वह बिंदु फैलता जा रहा है। फैलता जा हड़ाप् वह उन सब परिधियों को ढक लेता है जिन पर वह अपना सरबस साधे था। और अब? मैं खिलखिलाती हूँ, अब तू क्या करेगा प्यार? बोल! वह अचानक चुप होकर मुझे देखने लगा है। बेवकूफ सदा का! हाँ नहीं तो! उसकी आँखों मे अपरिचय है या दुःख? मुझे बेहोशी मे डूबते आदमी की तरह रंग-गंध आकार कुछ नहीं दीखते। सिर्फ वह, सिर्फ वह।

ढाई रुपया!" मस्ती तेलिहा वर्दीवाला वेटर हमारे सामने प्याले रखता हमारी नाल एक-दूसरे से काटता है। मैं अपना बटुआ सँभालती हूँ, वह अपना। वह मुस्तैदी से मुझे छेंककर रुपया दे देता है, सलाम ले लेता है और फिर इत्मीनान से पसरकर ऊपर नीचे, दायें बायें दुबारा मेरा चालू मुआयना करते हुए कहता है "और सुनाओ!"

हमारे सामने धीमे धीमे भपाते हुए दो प्याले हैं। दीवार के पोस्टर से झाँकती एक गदरायी अभिनेत्री ठुनककर अपना प्याला बढ़ाये कह रही है—लीजिए न! मैं अचानक प्याले अपनी तरफ खिसकाकर दूध-चीनी वगैरह मिलाने की घोर घरेलू व्यस्तता मे सींग-पूछ छिपाने लगती हूँ। पचीस साल औरत की जिन्दगी काटने के बाद यह कला मेरी नसों मे नीले गोदने की बुंदकियों की तरह गहरे से खुब गयी है। इसके दो फायदे भी हैं। एक तो यह कि आप अपने काँपते हाथों का काँपना बखूबी ढाँक लेती हैं, दूसरे इस अदा की आत्मीय वात्सल्य भरी गंध, सभ्य की सड़ाध को तुरत दबा-चबाकर मौके को एक पृथुल नितम्बिनी दयालुता के हवाले कर देती है। दयालुता, जो हर वक्त मेरे आगे पीछे मँडराती है। गाय की सी फली फैली आँखोंवाली बड़ी बड़ी मातृत्वपूर्ण ढलकी छातियोंवाली मैंद की लाई सी लोचदार और नम दयालुता। बहुत कम बोलनेवाली, बहुत गम खानेवाली, मेरी वह अभिन्न परछाई जो गुम्म चोटों पर पुल्टिस रखती, घावों पर मरहम लगाती मेरे द्वारा हर तोड़े फेंके और चीथे गये की किर्चों खिन्नियों को घर के पिछवाड़े फेंककर फिर हाथ बाँधे मेरी कुर्सी के पीछे आ खड़ी मुझे पंखा झलने लगती है। वह मेरी हर चीख, हर कोसने, हर झिड़की के परे

है। इन दास्त नहीं दिखते। न आग नही जलाती। न इन्सान हड़पमाने दारीरे! मरी सान जब पूरी तौर म ठण्डी हो चुकी होगी, मर लहू का हर कतरा जब पथरा चुका होगा, तब भी यह यूं ही चुपचाप अपन उबल अण्डे से भावहीन चेहरे को लिए मेरे पायताने बैठी रहेगी। आप न्सिदगी तो सही! मेरी सौन! मेरी यह दयालुता, मेरी परछाइ!

"आज दिन भर चीनी ही मिलाओगी ?" यह पूछ रहा है। मेरी हँसी छूट जाती है। मेरी हँसी उसे आश्वस्त करती है। हँसता चेहरा सब लोगों को सुहाता है। देखो! न्यारो उन सतत प्रसन्न, सतत शुक्रगुजार मुहरिनिया को जो पारिवारिक पत्रिकाओं में भद्र रानरगपन म पति और बच्चा का मौन इतजार करती हैं। एक मीठी मनुहार, एक चपटपट मनोबल म भल-पूरी सी सीझती हुई। मेरी नवनीयत सौत, मेरी यह दयालु चावदारनी मेरी परछाइ, तजनी टढ़ी कर उनके उस विह्वल नय म मुझे पतीस साला से शामिल होने को न्योत रही है। जहाँ व सब मिलकर मेरी जब्बर हड्डिया का सन्नमभरा क्रोध चूस डालेंगी और उनके पोलेपन म एक लहलहाता प्रश्नहीन अपार पारिवारिक प्यार ऐसे भर देंगी जसे कि भरवाँ करले में मसाला भरा जाता है। ठसाठस।

"क्या बात है, दुबली लग रही हो, काम ज्यादा पड जाता है क्या ?"

मेरी रुलाई छूटने छूटने को हो जाती है। वह अपने जिज्ञासाहीन प्यार से मुझे कुरेद रहा है। धीरे धीरे। मेरे पोलेपन को उजागर करते हुए। वह मुझे भहराना चाहता है ताकि इंट दर ईंट मुझे फिर से सिरजकर वह एक नयी बुलन्द इमारत खडी कर सके। वह इमारत जिसका नमूना उसकी काँख मे दबा है। वह वाकई मेरे बारे मे कुछ नही जानना चाहता, वह सिफ दरारें डालना जानता है। मेरे बारे मे अपने फुरसती क्षणा म बैठकर व सब गढते हैं—अपने अपने खाके, जिनम मेरा दुबलापन है, मेरी तुनकमिजाजी और मेरी आकस्मिक हँसी है। इसी को वे सब अलग-अलग ढग से जोडते गुनते रहे हैं। पर यह जो मैं ठीक सामने बैठी हूँ अपने इस अनमापे भूरे बजर विस्तार के समेत अपनी चिपकू दयालुता की बेडौल परछाईं से घिरी हुई, इससे उन्ह उसे, कोई सरोकार नही। न तब था न अब है।

मैं भरी मुट्ठी पीठ के पीछे लुका लेती हूँ खाली हथेली सामने फैला

देती हूँ, "कुछ-न-कुछ तो चलता रहता है। घर-परिवार का काम है, कॉलेज के इम्तिहान—" मैं गलती से एक उसाँस ले लेती हूँ। अचानक मुझे लगता है कि इस उसाँस का मतलब वह कुछ और ही गुनेगा। गुनता भी है।—बचारी! उसके चेहरे पर मेरी दयालुता की गऊ-आँखें कौड़ियों सी जड़ी हुई हैं, 'बहुत सहा है तुमने!" वह सिर हिलाता है दायें से बायें, भकुए सरीखा। उसे इस वक्त पक्का यकीन हो गया है कि मेरा अपन-आपको उससे काटकर अपना रास्ता अलग चुनने का निर्णय कतई गलत था। बेचारी! गुमराह, असहाय लड़की! अपने फुरसती क्षणों मे वह मेरी कितनी मसीहाई कर चुका होगा! मेरे दु:ख से अपने आपका दोगुना चौगुना गुनते हुए। यह बात वह कभी नहीं समझ पायेगा कि एक लम्बे भिन्न के जटिल प्रश्न की तरह जोड़ घटाना गुणा भाग की अनन्त प्रक्रियाओं से गुजरती हुई मैं जब तक उसके पास पहुँचती हूँ, कितनी सूक्ष्म, कितनी सरल और कितनी बुनियादी रह जाती हूँ वह मुझमें से गुजरकर उन सब चक्करदार प्रक्रियाओं से मेरे साथ-साथ घटित होने के बजाय हर बार मेरी बुनियादी सरलता पर विमुग्ध मेरे चहुँओर चकराता रह जाता है, मेरे उस नदी के से शतधा रूप से कतई नावाकिफ, जब एक विराट घिर्री से छिलती पेंसिल की तरह झन्नाते पतीला, भुन्नाते बूढ़ों और बदहवास बच्चा के हुजूम को भिगोती, अपनी छूटती बस पकड़ती मैं कालेज के हाते मे ठीक टाइम पर पहुँच जाती हूँ। जिस वक्त पहली घण्टी बज ही रही होती है उस वक्त मौके पर आ पहुँचने की खुशी मेरे ऊपर जो घनघना बरसा जाती है वही भर उसकी पकड़ मे आता है, खीसें निपोरता मग वह फा फों तृप्त क्षणिक स्वरूप, जब मैं और मेरी परछाईं अपनी तृप्ति भरी शुक्रगुजारी मे यकायक एकाकार हो उठती हैं।

अगर बार-बार जनता की भारी माग पर हफ्तों रोकी गयी फिल्म की तरह इसी तृप्ति मे मैं न छेंकी जाऊँ तो शायद सोच सकूँगी कि इस मोटी तनख्वाहवाली नौकरी और सदा सुहागिन गहस्थी के परे कोई तीसरा रास्ता भी खुलता है क्या? खुलता होगा। जरूर! एक धुकधुकी भरी शका, एक नीली अतृप्ति अलस्सुबह की ठण्डी घड़िया मे आवारा बिल्ली की तरह कूदकर मेरी छाती पर आ बैठती है। मेरे भीतर दो विराट भूर डने फड़फड़ाते

हैं। एक तीखी नोकदार चोंच पर मेरा प्रश्न छटपटाते चूहे की तरह टँगा है। कौन ? कौन ? कहाँ ?

पर जब तक मैं कुछ सोचूं सोचूं, दयालुता लपककर मेरे हाथ से माचिस लेकर गैस जला देती है, पानी चढ़ाकर बिस्तरे तहा देती है, और दिन फिर से गुम्म हो जाता है। एक विराट पारिवारिक हड़बड़ी में सारी नोकें ढाँपता हुआ। मेरी सौत ! मेरी दयालु परछाईं फिर वहीं खड़ी है !

"कहीं बाहर चलें तो ?" मेरे वाक्य से वह कुछ चौंकता सा है। पर फिर तत्परता से खड़ा हो जाता है।

'हाँ हाँ, चलो !"

शायद उसकी तत्परता मुझे सुहानी चाहिए थी, पर अब गैरजरूरी लगती है अब एक काला संशय धुएँ की तरह से हर चीज को भयावना और बेखौफ बनाता चलता है। यहाँ तक कि मेरी विद्रोहभरी आक्रामकता भी कहीं उसके बनाये मेरे वजूद से मेल खाती है। लगता है कि मैं बस एक रोल बखूबी अदा कर रही हूँ जो उसने मेरे लिए लिखा है, जिसमें मेरी तकलीफ उसे नहीं दीखती, उसे अपनी कारगुजारी दीखती है जभी वह इतना खुश है। खुश होकर वह मुझ पर बेतरह दयालु हो गया है। उसका हाथ मेरी पीठ पर पितृत्वभरा स्पर्श बनाता है, फिर हम बाहर हैं।

"इस शहर को तो तुम ही ज्यादा अच्छी तरह जानती हो। कोई पार्क है पास में ?" वह पूछता है। गैरशहरी होते हुए भी इस वक्त उसके ज़हन में गुलमोहर अमलतास का ठण्डा छाँवभरा, पुरसुकून कोई एकान्त है जहाँ मेरे बच्चों की तरह छोटे और नम हाथ थामकर वह मुझे अपनी शर्तों पर खेल खिलायेगा। कभी हरा देगा कभी जितायेगा। हर हाल में अपनी ताकत में सराबोर ! चित भी उसकी, पट भी उसकी और अण्टा उसके बाप के बाप के बाप का !

चलो ' मैं अब उसे पास के एक पार्क की तरफ ले जा रही हूँ यह भली तरह जानते हुए कि उस चिलक भरे विस्तार में न कोई ठण्डा छाँव है, और न ही लहलह क्यारियाँ ! वहाँ बस ठप ठप हिलती एकाध बेंचें हैं और

उन्ही म से एक पर उसे बिठाकर मेरे भीतर की सतत भीरु दयालुता गोल-मोल चक्करो मे दौडती मूक प्रतिवाद म छटपटाती है। वह मुझसे डरती है। वह डर स मरती है! चल भाग!

हम दोनो हिलती हुई बेंच पर बैठ जाते है। वह चारा तरफ एक उडती-सी नजर डालता है, पर कुछ कहता नही। अमलतास? गुलमोहर? मैं हँसने को होती हूँ पर वह फिर मुझ तक लौट आया है। टकाटक! मेरे टुच्चेपन को उसने एस औदाय से वस्त्र दिया है कि मैं एकदम बौनी हो गयी हूँ! अपनी परछाइ से भी छोटी। और इस वक्त वह बेसाख्ता मुझसे प्यार कर रहा है। मेर सार जिद्दी वजूद को अपने वजूद से टटोलते, मेरे घावो, मेरी दुखती चोटो का अपने प्यार की असहाय ताकत से पूरन को, मेर भीतर-बाहर, ऊपर नीचे, घूमते मँडराते, ऐसे कि मैं थककर अन्तत पूरी-की पूरी सो जाऊँ और वह मुझे उठाकर एक सुरक्षित किले म ले जाय जिसके बाहर घूमते दैत्यो के आतनाद से डरकर मैं उससे लिपट पडूगी और तब वह कहेगा कि आओ, और मैं कहूँगी कि आती हूँ, और झरने की तरह उफनाती हुई मैं आऊँगी और उसे सराबोर कर दूगी। नही!

"मैं चलती हूँ अब!" अपने सुर की रुखाई मे मैं शर्मिन्दा होती हूँ। अनसीझे चमरौंधे की तरह एक लस्तपना मेरे भीतर चरमराता है। मैं जानती हूँ कि वह मुझे वाकई सराबोर करने की हद तक प्यार कर सकता है, इस वक्त। अभी। पर इसक बाद जब मैं अपनी आँखो मे उस अपनी ही पीठ थपथपाता पाऊँगी तो मुझसे सहन नही होगा। क्षण की क्षणिक सुन्दरता का भरपूर मजा लूटकर एक दयालु अनन्तता म वह मुझे सदा की तरह कील जायेगा, पर अब मैं उतनी भोली नही जितनी पन्द्रह वरस पहले थी। न ही इतनी भली। इस नेकनीयत अनन्त को लेकर मुझे क्या करना जो मुझे जरी का हार बनाकर मेरी ही मूरत पर चढा जाये? पर अगर मैं उससे कहूँ कि मैं इस क्षण को उसकी सारी क्षणिकता और भगुरपने के साथ उसके साथ बाँटना चाहूँगी तो उसे बर्दाश्त नही होगा। है कि नही?

'क्या हो गया अब?' वह लाडभरे पुरमजाक सुर मे पूछता है, "तुम्हारी सुनकमिजाजी गयी नही, देखता हूँ।" उसकी प्यारभरी भूरी आँखो मे करुणा का उद्दह समन्दर है, उस कारण के लिए जिसका सिरजनहार वह खुद है।

वह इसे मानेगा क्या ? एक लम्बी चौड़ी रेशमी दुलाई की तरह उसका प्यार मैं जब चाहूँ मुझे पूरा-का पूरा ढाँप सकता है, वैसे ही जैसे कि किसी भी तुच्छे का फिकरा मुझे पूरे-का पूरा उघाड़ सकता है। पर मैं न तो ढाँपी जाना चाहती हूँ, न उघाड़ी जाना। मैं अपनी उम बडौल सतत धैर्यवान, सतत क्षैतिज परछाई समेत सीधी सतर गरदन उठाय सड़क के इस पार स उस पार तक जाना चाहती हूँ। तब ? तब मैं यहाँ कर क्या रही हूँ ? अपन को हरी घास के मैदान की तरह उसकी करुणा की टापो-तले खूद जाने का बिछाती हुई ?

"अच्छा चलू, फिर अँधेरा हो जायेगा। तुमसे मिलकर वाकई —'

बात अधूरी ही रह जाती है। अपने असहाय प्रेम मे सराबोर वह अभी तक ताके जा रहा है, और इस वक्त भी वह उतना ही सुन्दर और स्पृहणीय है जितना कि पहले था। और इस क्षण भी अगर मैं एकदम से रुख बदलकर कहूँ कि 'रुको' तो वह तुरन्त रुक जायेगा, इस इन्तज़ार म कि मैं कहूँगी 'रेडी, गो!' और हम एक नयी पारी शुरू कर सकेंगे। पर इतनी नफरत मैं उससे कभी नही कर सकती कि उसी का खेल फिर से चालू कर दू। और न ही इतना भरोसा रह गया है मुझमें कि इस सूने पाक के बजर विस्तार के बीच रखी हिलती डुलती इस हरी बेंच पर बिठाकर उसे पूछू कि मरे इन सरेआम अपमानो, इस अकारण भय और शर्मिन्दगी का जवाब मुझे कहाँ मिलेगा ? हालाकि सिफ उसन मुझे यह नही दिय, पर क्या नही अपने रशमी प्यार के सारे इन्द्रजाल समेत वह मुझे बगैर पालतू बनाये इनसे उबार सकता ?

'अकेली कैसे जाओगी ?" वह पूछ रहा है। उसकी चिन्तातुरता म भी उसकी ताकत का भरपूर अहसास है।

"जैसे रोज जाती हूँ," इस क्षण मैं भी एक छोटा-सा ओछापन दिखाने से बाज नही आती। शम। शम। चुप ! "उधर स छ सौ दो मिल जाती है, घर के ऐन पास छोड़ देगी।"

"अच्छा फिर—"

हाथ हिलाता वह छिप गया है। दिन भी ढल चला है और एक खास तरह का शहरी अँधेरा दाढ़ी की खूट की तरह सड़को पर उग आया है,

स्याह। शका। दुविधा। फिक्र। जभी मैं उसे आता महसूस करती हूँ, नीली पतलून और कुछ-कुछ तेलौंस कालरवाला साँवला चूहे-सा आदमी, कनखियो से अकेलेपन का जायजा लेता, साँप-सा सरपट सरकता, आडे-टेढे वह मेरे साथ सडक का अतिम अकेला कोना पार करने लगता है। शका। भय। शका। वह एकदम पास आ गया है, इतने पास कि भिचे दाँतो के पीछे मैं उसकी हिंस्र फुसफुसाहट साफ सुन सकती हूँ "कुतिया! ले जायेगी? ले जा! ले जा!" उसका भद्दा इशारा उस भर्रायी आवाज की कायर प्रतिहिंसा मुझे ऐन चौराह पर सनीमा के पोस्टर की तरह गेंठ देते है। और इस अपमान से निष्कृति किधर है? एक तो वह खोह है प्यार की, जिसमे अपने को पूरा-का-पूरा मैं अभी उल्टे पैरो जाकर ऐसा गुड्‌प कर सकती हूँ कि चाँद और सूरज भी मेरी परछाई नही छू सकेंगे, या फिर यह कर सकती हूँ कि निरन्तर अपना आचल खीच रही अपनी दयालु परछाइ के अक्षुण्ण हरियाले विस्तार मे दूब की तरह ऐसी बिला जाऊँ कि मुझे खोजना भूसे म सुई ढूढने के बराबर हो जाये! क्यो? क्या इरादा है? मैं अपने-आपसे पूछती हूँ।

सामने बस स्टॉप दीख रहा है जहाँ एक पसीजती कतार बस के इन्तजार मे ऊँघती खडी है। मेरे जीवन के इस क्षण की प्रकाण्डता का उन्हे तनिक भी भान नही। उन्हें कोई सरोकार हो भी क्यो? आखिर मैं चाहे इधर जाऊँ, चाहे उधर, और चाहे अपने निजी भाड मे, इससे न तो उनकी बस ही जल्दी आयगी, और न ही देरी से जायेगी। है कि नही? रही जवाब की बात—

यानी कि एक बात थी

बिब्बो

फैशन के लिहाज से यह बूढ़ों का वर्ष था। खूब कसकर, तकरीबन माथे के ऊपर ही मरोड़कर बांधे गये जूड़े, नोच नोचकर बेहद पतली बना ली गयी बेचारी भौंहें, और सुनहरी कमानी के गोल चश्मों का वर्ष। कपड़े भी बीहड़ हो चले थे। बेमेल हथकरघे की साड़ियां और छींटदार ढीले ब्लाउज़ चांदी के काले पड़े हुए मैले आभूषण या झब्बानुमा कुर्ते और तंग मोहरी के पजामे। आंखों में सुरमा फिर फैशन में आ गया था, या फिर काजल। पिछले सालों के नीले बैंगनी लिपस्टिक और पपोटों के ऊपर लगाये जानेवाली सुनहरी धानी शैडो नकली पलकों समेत न जाने कब अपने आप गायब हो गये थे! यह फैशन का क्षेत्र भी एक बड़ा रहस्यमय इलाका है जनाब! यहां बिना हल्ले, बिना हड़बाग के अचानक रातों रात सब बदल जाता है! ऐसे, कि पहले-पहल तो आपको यकीन ही न हो, कि यह भी भला कोई फैशन है क्या? पर धीरे धीरे लगने लगता है कि भई वाह असल फैशन तो यही है बाकी हम सब तो क्या नाम मख मार रहे थे! है कि नहीं?

तो उस छोटे-से निंदियाये शहर में भी जहां हर चीज़ साल दर साल समुद्रतल की काई की तरह धीमे धीमे लहराकर तिरती झूमती ऊंघती रहती थी ऊंचा फैशन आ धंसा। एकाएक, यानी जिस अंग्रेजी पत्रिकाओं की भाषा में कहते हैं हाई फैशन।'

पहले दो-तीन ट्रकों में अम्बार लगा हुआ सामान आया, फिर गमले

आये, फूलो और विचित्र रगोवाले पत्तो से चकाचक, फिर कुत्ता, फिर काका तुआ फिर वे दोनो, और सबसे अन्त मे बिब्बो। पति ऊँचे, लम्बे कद का हँसमुख दोस्तबाश इनसान लगता था। कीमती गम कपडे का ढीला कुर्ता वह एक सामन्ती लापरवाही से धारण किये हुए। हा, हाँ, वे लाग कपडे पहनते नही थे, वैसे जैसे कि बाबुओ, व्यापारियो के चुस्तकाट लडके-लडकियाँ पहने रहते हैं अपने बदन के बेडौलपने और अपने सस्कारो के भायरेपन को और ज्यादा उभारते हुए। वे लोग अपने वस्त्र धारण' करते थे, जैसे कि पारम्परिक प्रस्तर मूर्तियाँ मन्दिरो म करती हैं। पति के गले मे उत्तरीय नर नही था, पर तब भी कल्पना की जा सकती थी कि वह किस प्रकार उसकी तही को बायें हाथ पर झेले हुए विराट हस्तमुद्राओ से एक कलात्मक पौरषमय अन्तरिक्ष रचता यदि वैसे परिप्रेक्ष्य मे उसकी कल्पना करो तो।

पत्नी मुनहले से जिस्म की सुन्दर लडकी थी। लडकी कहना ही पडेगा, बावजूद उसके कसे जूडे, नुची भवो और सुनहरी कमानी के गोल चश्म के। उसका जबडा कुछ-कुछ चौकोर था, और एक ऐसी खानदानी जिद से भरा हुआ भी, जो पीढियो से अपना हुक्म बाअदब बजवाती रही हो। वैसे उसकी आवाज बहद नरम और हलीम थी, और उसका उच्चारण गुनगुनी अग्रेजी ध्वनियो से पगा हुआ था। आ' की मात्रा को वह हलक मे घुमाकर बोलती थी, और 'र को एक बेहद प्यारेपन से 'ड और 'र' के बीच का हर्फ बनाकर कहती। एक हल्का पजाबी कटाव उसकी अग्रेजी के सारे परदेसीपने को फाडकर उसे एक प्यारी प्यारी सम्भ्रान्त आचलिकता के घेरे मे ले आता था। वह कुछ कुछ रुककर झटके से बोलती थी, जैसे कि सामगान किया जा रहा होगा। उसके नन्हे नन्हे गुडिया हाथ, उस वक्त एक कमनीय अन्तरिक्ष रचते होते, हालाँकि उसकी अँगुलियाँ लम्बी, कलात्मक नही, बल्कि छोटी, चौकोर, पुष्ट और दुनियादार थी।

बिब्बो की बात और थी। वह उस नन्ही गुडिया पत्नी की निजी नौकरानी के बतौर आयी या लायी गयी थी। और उसके नाम के अनुरूप ही उसका जिस्म और उसकी पूरी शख्सियत एक निहायत सुखद व मासल किस्म से

एक पजाबी, कतई भौतिक चाक्षुप उपस्थिति थी। वह अपनी मालकिन की विगत फैशनवर्षों की वे उतरनें पहने रहती थी, जो लगभग कोरी ही होती, पर उनमे उसके अपने खास निजी स्पश थे। सब कुर्तों के गले उसने नीचे तक काट डाले थे और उसका विराट वक्ष उसके बीच सुगन्धित जेली की तरह निरन्तर काँपता रहता था। उसकी कमर चौडी, पर सुडौल, कूल्हे भर और तनिक उठे हुए थे। उसकी आँखें वीरान और चेहरा भावहीन होने के बाव जूद उसकी चाल जवानी के खुमार से बोझल और लडखडाती हुई थी—ऐसी कि हर किसी को लगता था कि उसके सहारा दिये बगैर वह चल नहीं पायेगी। चूकि घर के सारे बाथरूम सगमरमरी फश के थे, चुनाँचे वह कपडे बाहर लान के नल पर धोती थी। दुपट्टा झाडी मे टाग अपनी शलवार टखना तक चढाये, आस्तीन समेटे वह जब झपाक झपाक की ध्वनि से मुगरी चलाती तब मुहल्ले के सारे नौकर घर के पतीले गैस पर जलते छोडकर निकल आते थे। वह न उनमे से किसी से बोलती, न चालती। एक मस्तानी अदा स अन्तिम कपडे को पछोर, फीच और झटकारकर वह प्लास्टिक की बाल्टी मे डालती और हाथ बढाकर दुपट्टा उठा खरामा-खरामा घर के भीतर दाखिल हो जाती। मुहल्ले की फुमनी दोपहर देर तक उसके नितम्बो से सटी पेण्डुलम सी डोलायमान होती रहती। हर रोज।

हर रोज ठीक ग्यारह बजे पति अपनी गाडी मे काम पर रवाना होता और पत्नी उसे दरवाजे तक छोडने आती। वे अग्रेजो की तरह चुम्मी लेकर 'अलविदा' कहते थे और फिर पत्नी अपनी अटकती सी जुबान मे बिब्बो को पुकारती आदेश देती, भीतर चली जाती—बडा बँधा-बँधाया दैनिक दस्तूर था। ठीक साढे ग्यारह बजे एक सुन्दर प्लास्टिक का झोला टाँगे बिब्बो दरवाजे पर नमूदार होती और अपनी लडखडाती मदमस्त चाल मे बाजार की ओर निकल जाती। नुक्कड पर कपडो पर प्रेस करता रामनरेश धोबी अपने विविध भारती कायक्रम का वाल्यूम ज्या ही बढाता, तो पता चल जाता कि वह ढाल पर उतर रही है। फिर 'चौरसिया पान भण्डार' के ठहाके अचानक ऊँचे हो जाते, पाकेटा से कघिया निकल आती फुग्गे सँवरने लगते—यराज्जा !

धीरे धीरे उन लोगा के मित्र भी बनने लग थे। यह शहर का सम्भ्रान्ततम

पुराना इलाका था और यहा के सब बाशिन्दे बड़े बापो की औलादे और बड़े दादाओ, पर-दादाओ के पोते पोतियाँ थे, नौकरी करना जिनके लिए एक शुगल था। उनके पास इतना था कि बताना गरलाजिमी हो चुका था। इन बगलो की अपनी दुनिया थी, अपने जश्नो—सैर-सपाटे और अपने खफीफ से मज़ाक या बदगुमानियाँ थी। नयी या चकाचौध करनेवाली चीजा से उन्हे सख्त परहेज था। इन बगलो के आरामगाहो मे पुरानी धूसर मूर्तियाँ, नायाब ब्रोकेड के पुराने सोफे, शिपेनडेल का प्राचीन फर्नीचर और अलकरण एक समझदार उकताहट स बिखरे रहते। उनके फ्रिज रसोईघरो मे थे और बड़े नामीदामी स्टीरियो यूनिट भीतर की किसी कुठरिया मे। वे सब धीमे बोलते, धीमे चलते और धीमे धीमे खाते थे। उनका सब कुछ एक *अलस अनौत्सुक्य मे भीगा भीगा और एक बालसुलभ विश्वास मे मढा हुआ* था। ऐसा बालसुलभ विश्वास, जो सिर्फ उन्ही लोगो मे होता है जिनका बचपन सतरगी परीकथाओ की झाग मे से सीधा निकला हो—दूधिया, कच्चा, पुरतासीर।

पत्नी अपनी भोली भाली आवाज मे मित्रो को प्राय बताती थी कि बिब्बो घर के क्षेत्र मे उनका एक प्रजातान्त्रिक प्रयोग थी। अगर आप इनसानो की तरह उनसे पेश आयें तो कोई कारण नही कि नौकर हमदद मनुष्यो की तरह आपके घर मे काम न करें, उनकी भी 'वाइब्स' हैं, उनकी भी 'एम्बियासेज' हैं, नही?

बिब्बो वही खाती थी जो वे खाते थे—यानी मक्खन, अण्डा, फल, दूध, पनीर सब। वह हर महीने अच्छे कपडो से लैस करायी जाती, उसे हर पखवारे अच्छा साबुन, शैम्पू और टैलकम पाउडर लेकर दिया जाता। "उनसे वह जो करे उसका अपना सिरदद है, हम उससे एक इनसानी धरातल पर पेश आना चाहते हैं, मालिक-नौकर के स्तर पर नही, बराबरी के स्तर पर।" फिर मालकिन अपनी मृदु आवाज़ और भी मृदुल सगीतमय बनाकर कहती, "बिब्बो—दो निम्बू पानी और प्लीऽऽज़।' बिब्बो रानी एक सक्सी रोबोट की तरह हिलती-डुलती निर्विकार चेहरा लिये कुछ देर बाद नमूदार होती,

हाथ में एक खाली चाँदी की पुश्तैनी ट्रे हिलाती हुई, "निम्मक वाल्ला के, चीन्नी वाल्ला।" उसका स्वर उसके चेहरे की तरह भावहीन होने पर भी, उसके जिस्म की तरह कुछ फटा-फटा पर एक हमारा दृष्टिकोण से आकर्षक था। पत्नी तुरन्त विनयविगलित हो मेहमानों से पूछा मीठी पूछती कि वे नमकवाला लेंगे या चीनीवाला! वह तो नमक लेती है पर जैसा वे चाहें। फिर आर्डर दे दिया जाता, और हिलती-डोलती किच्चो पर्दे पर गुमी चोंग की पुरानी पट्टियाँ पकड़कर भीतर चली जाती।

तभी पति-पत्नी ने लोगों को यह भी बताया था कि उन्होंने पिछले शहर में किच्चो को एक ब्यूटीशियन से ट्रेनिंग भी दिलवायी थी, ताकि उसे एक और हुनर आ जाय। पढ़ने या टाइपिंग सीखने में उसकी रुचि नहीं थी तो, "अब वह ऐसा फेशियल करती है कि त्वचा का पोर-पोर जाग उठे। मेरे बाहों के बालों की वैक्सिंग भी वही करती है,' पत्नी अपनी रोमहीन सुडौल गोरी भुजा फैलाती।

'क्या सिर्फ स्त्रियों को ही देती है फेशियल ?'

"नहीं, नहीं।

' क्या सुंदरता औरतों का ही हक है ?"

"आप चाहें तो—

हा-हा-हा—मजाक छिड़ गये—पहले तुम पहले तुम। फिर एक जना मजाकों से बिंधा आधा मगन आधा उगन होता किच्चो के साथ भीतर की कुठरिया में चला गया और आधे-पौन घण्टे बाद चमकता चेहरा लिये नमूदार हुआ, 'मानना पड़ेगा है तुम्हारी मुदल्ली के हाथ में जादू।'

' यही तो मुझे भी अचरज होता है' पत्नी चहकी, "पर वैसे काम में तो ऐसी बेशऊर है कि यदि कुक न होता तो हमें शायद समय से खाना भी नहीं मिलता इतने ग्लास और प्याले तोड़ती है कि भगवान बचाये, पर इस काम में हुनर हासिल है।'

' अपने-अपने हुनर हैं—हा हा हा हा।" फिर अचानक उनके घर लोगों की आवत-जावत बढ़ने लगी। इस मोहल्ले के पुरुष यूँ भी नौ से पाँच दफ्तर जानेवालों में नहीं थे। दफ्तर तो उनके अपने थे ही। जिन बिल्डिंगों में दफ्तर थे, वे बिल्डिंगें भी उनकी ही थीं। सब अक्सर पति लंच-टाइम पर

आता तो पत्नी मुनाती रहती, "लच अधूरा बना पडा है और बिब्बो फिर किसी को 'फेशियल' दे रही है पसोस का मामला था—अपने आजाद ख़यालो और वक्तव्यो से भरे इतने जमावडा के बाद गली कूचे की औरतो की तरह टोकाटाकी करना भी उनके लिए सम्भव न था। भलमसी की मार। वे लोग बडे पशोपेश मे थे। इधर बिब्बो की भूख का मानो अन्त ही न था। सुबह वह छह टोस्ट और दो तले अण्डे डकार जाती—साथ म एक गिलास दूध। जबकि देह की तराश को लेकर सजग पति पत्नी कुढते हुए सिर्फ काली कॉफी और टोस्ट भर लेते और जब वह आकर लचककर कहती, "जी, कल का सालन पडा है, मैं ले रही हूँ टोस्ट दे नाल अच्छा?" तो वे बगलें झाँकने लगते। दूध भी वह दिन भर पीती रहती।

पत्नी को लगने लगा था कि वह फ्रिज मे ताला लगा दे, तो ठीक रहे। गुच्छा-भर पुष्ट केला चाँदी के 'फ्रूटबोल' मे सुबह रखा होता, शाम तक एक काला-सा सुकडा केला उसम पडा रह जाता। अचार की शीशिया की शीशियाँ साफ हो जाती। जैम के भी वही हाल। पत्नी के मायके स मव के थैल आते, उनका माल भी देखत-देखते आधा रह जाता। फिर खरबूजे को देखकर खरबूजा रग पकडता है ही। बिब्बो की देखा देखी खानसामा की भूख भी चमक उठी थी। जितनी देर पत्नी कुठरिया मे शास्त्रीय सगीत के 'स्टीरियो रेकाड' लगाकर पडी पडी अग्रेजी किताबें पढती, उनके विदेश से आयातित ट्रांजिस्टर म तेज फिल्मी गाने लगाकर वे दोना रसोई मे ठिल-ठिलाते रहत। "आदिम भावनाएँ हैं, लव, हा, हा, हा!" पति न मित्रा के बीच पत्नी को फिर समझाया, "वे लोग अपने को नही रोक सकते। कुत्ता बिल्लियो की तरह उन्हे मजा करने दो, शाम को खाना और उम्दा मिलेगा—हा हा हा!"

"उम्दा तो क्या, चार गिलास और दोनो तोड डालेंगे" पत्नी न झमक कर कहा। उसका धैर्य कोनो स फटने लगा था, "उसे मालूम है कि सुबह ठीक आठ बजे मुझे पलग मे कॉफी चाहिए। उसके बिना मेरा जहन काम नही करता। आज नौ बजे तक नही आयी। देखने गयी तो खानसामा कहता है—वह अभी सो रही है। खानसामा, आफ आल द पीपुल। मुझम! वह भी उसका लेकर!"

"तो तुमने क्या किया ?" यह शायद उस दिलजली ने पूछा, जिसका पति उस वक्त बिब्बो से मालिश करवा रहा था। "मैंने वहीं खडे-खडे लताडा उसे कि ऐसे बात करते हैं क्या ? तभी देखती हूँ कि मलकाजी आखें मलती आ रही हैं— क्या बजा है बीजी ?' आय टैल यू—मैं तो गुस्से के मारे उल्ट पाँव लौट आयी।"

'मेरी मानो तो इसे चलता करो।" किसी ने सलाह दी।

'वही सोचती हूँ पर आजकल फिर नौकर मिलते कहा हैं! उनके बिना भी तो—"

"यह तो है !"

गर्मिया बीती, जाडे आये पर बिब्बो के मारक जिस्म ने शालें नही ओढी। हालाकि उसकी मालकिन छह हजार रुपये का पुराना पश्मीना ओढे हीटर के पास बैठी 'हू हू' करती रहती। मक्खन, मेवे घी की चुनाई से चिकना अपना उबले अण्डे-सा भावहीन चेहरा लिये बिब्बो उसके गुडिया हाथो-पैरो चेहरे की उबटना से मालिश करती कील मुहासे निकालती भँवें सँवारती और टांगो पैरो को रोमहीन बनाती रही। जाडे-गर्मी-बरसात किसी मौसम का उस पर कोई असर नही था। उसका खमदार बदन वैसा ही मस्त रहा आया और रगीन पटियालवी फूदने से सजी उसकी लम्बी गुत्त उसके विराट कूल्हो पर डोलती एक बडे समुदाय का तन मन डोलाती रही।

'आजकल मैं कोशिश कर रही हूँ कि वह कुछ बुनाई-कढाई सीख जाय, पढाई लिखाई न सही!" अपनी रोथमैंस सिगरेट का कश लेकर पत्नी ने कहा। वह एक ढीला कढा हुआ लबादा पहने हुए थी जो उसकी किसी पूर्वजा के किसी नायाब कश्मीरी शाल को काटकर सिला गया था।

सिखायेगा कौन ?" किसी ने जिज्ञासा व्यक्त की। उन लोगो को इस तरह की चीजें आती ही कहाँ थी ? काढना बुनना, पकाना—पर जरूरत थी भी नही। उनके लिए ही तो यह काम किये जाते थे, सारी दुनिया मे। अगर वे लोग भी अपने कपडे खुद सीने काढ़ने लगते तो उन भव्य सिलाई की दुकानो का क्या होता ? पत्नी ने उसी किस्म की एक दुकान का नाम लिया, जहाँ शाम को मध्यवित्त गृहिणियो और उनकी विवाहयोग्या

लडकियो के लिए सिलाई कटाई की क्लासें होती थी। ड्राइवर शाम को अपने घर जाता हुआ उसे छोड आयगा और वापसी मे वह बस ले लेगी। बस इतनी ही-सी तो बात थी! पति पत्नी अपने औदार्य और अपनी स्कीम के चौकसपने पर बडे खुश थे। "उसकी 'साइकी' (अन्तरात्मा) को कुछ तो रचनात्मक सन्तोष मिलना चाहिए," पत्नी ने अपना गुडिया हाथ लहराकर कहा, "वर्ना औसत हिन्दोस्तानी लिबिडो (अस्मिता) छोटे शहर मे ऐसी कुचली रहती है कि सिवा सक्स के दिमाग मे कुछ आता नही।' फिर कुछ देर वे सब बेहद सुथरी और विद्वत्तापूर्ण अग्रेजी मे आम भारतीय और सैक्स पर खुली बातचीत करते रहे। वे लोग खुली बातचीतो और खुली बहसो के आदी थे, इतने कि वे कल्पना भी नही कर सकते थे कि वे बिब्बो को उस दब्बूपने और सकीर्णता म बाँधकर रखेंगे, जिसमे आम भारतीय औरत खासकर नौकरानी को रहना पडता है।

पर इस सब सौहार्द्रपूर्ण खुली बातचीत के बाद जब बिब्बो को इसकी सूचना दी गयी तो उसने अपने नितान्त भावहीन तरीके से साफ मना कर दिया, "नही जी, क्याऽ करना!"

"पर तब तुम कपडे सिल सकोगी?" उन्होने सुझाया।

"बहोत है जी फिर दर्जी तो है ही—"

'घर मे हमारा थोडा मरम्मत रफू का काम कर लेना।"

"सो आप दर्जी से करा लो बहतर करेगा!' इतना कहकर वह कुछ हँसी सी।

"तुझे मशीन ले देंगे—कौन सी है डार्लिंग, वो हिन्दोस्तानीवाली जो मिडल ईस्ट को भी एक्सपोर्ट होती है?'

"हाँ हाँ, निशा वाली, फिर तू कपडे सीना मजे मे!"

"क्याऽऽ करना जी," बिब्बो ने बातचीत को पक्का पूर्ण विराम देते हुए कहा और नल के नीचे सलाद धोने लगी। उनकी पूरी योजना गडबडा गयी थी।

"पर तू दिन भर तो खाली रहती है फिर क्या करेगी!"

"सोऊँगी जी" उसने उसी ऐतिहासिक भोलेपन से कहा जैसे कभी नूरजहाँ ने कबूतर उडाये थे, और खानसामा को देखकर हँस पडी।

बिब्बो एक सरदर्द होती जा रही थी। वह देर तक सोती, ढेरा-ढेर खाना खाती और वक्त बेवक्त चीजों की फब्तियाँ मारती रहती। दो एक बार मालकिन ने उसे अपना शैम्पू और टैलकम चुराते रंगे हाथों पकड़ा भी। खानसामा भी उसकी सोहबत में ढीला और ढीठ होता जा रहा था, वह तो थी ही। उधर से इधर और भाव बताने लगी थी। जब उनका कोई मित्र आकर 'फ़ेशियस' को कहता तो उन्हें बुलाये जाने पर वह एक ढीठपने से उन्हें ऊपर से नीचे तक घूरकर सिर को भीतरी कमरे की तरफ झटका देती, "चलिए" और कूल्हे मटकाती आत्मविश्वास के साथ बगैर पीछे देखे भीतर चल देती कि वह आ भी रहा है या नहीं। यह बात और थी कि वह अवश्य आता। "ले देकर एक शाम का समय होता है, उस वक्त ये लोग आ जाते हैं—" होंठ चबाती पत्नी कहती। उस वक्त उसका जबड़ा कुछ चौकोर और चेहरा तना-तना हो जाता।

फिर एक दिन बिब्बो के घर से खत आया, जो किसी गाँव के पढ़े लिखे ने बिब्बो के बाप की तरफ से लिखा था, कि बिब्बो के लिए उन्हें एक लड़का मिल गया है जो फौज में है और शक्लो-सूरत का भी ठीक ठाक है। बिब्बो की छोटी बहन कुक्कू सेवा में आने को तैयार है उसकी तो जिन्दगी बन जायेगी वगैरह, वगैरह।

"न कुक्कू, न पुक्कू बस इसी को भेज दो वापस। अच्छा बहाना भी है इस वक्त। पत्नी ने संतरा चूसते हुए कहा। बिब्बो उस समय बाहर कपड़े धो रही थी और पत्तियों की मेड़ के आसपास दर्जनों नौकर पतंगों की तरह मँडरा रहे थे।

'पर फिर तुम्हारा काम कौन करेगा ?" पति ने एक खैरख्वाह मित्र की नरमाहट भरी दृष्टि से पत्नी का नाजुक जिस्म निहारा। "कोई यहीं की बूढ़ी बाई मिल जायेगी, ज्यादा पैसा देकर! तुम चिन्ता न करो। सिर्फ इसे भर पैक ऑफ कर दो, वर्ना खानसामा इसे लेकर किसी भी दिन छोड़कर चल देगा, फिर क्या होगा ?'

'सो तो है" पति ने सोचते हुए कहा।

तो एक दिन बिब्बो का बिस्तरा बँध गया। उसके दो टीन के ट्रंक कार में रख दिये गये, दरी में बँधा एक अदद बिस्तरा भी। पत्नी ने उसे एक

घण्टा जीवन, आदर्श, विवाह की जरूरत और नारी स्वतन्त्रता के बारे में समझाया, जिसके दौरान वह सिर्फ 'हूँजी', 'हूँजी' करती या उबासियाँ लेती रही। उसे और उसके फौजी को इस सबसे करना भी क्या था? न एक बार उसने पति-पत्नी को धन्यवाद दिया, न ही हर्ष या शोक जैसा कुछ व्यक्त किया। कुछ लोगों का कहना है कि टैक्सी के चलते-चलते उसने पूरे पड़ोस की खिड़कियों को हाथ हिलाया और कुछ मुसकरायी सी थी—पर हो सकता है यह उनकी कल्पना भर हो।

कुछ दिन वे लोग बिब्बो को याद कर परस्पर हँसी मजाक करते रहे—फिर उसे भूल-सा गये।

पितृदाय

दो हफ्ता से लगातार अस्पताल के जीने चढते उतरते नर्सों डाक्टरो के पीछे लपकते, दवाइयो की दुकान के चक्कर लगाते, उमेश अब कतई पस्त हो गया था। यू पस्त तो आदमी दिन भर कालेज मे पढाकर भी हो ही जाता है, पर यह पस्ती उस पस्ती जैसी न थी। लाख उबाल हो या खीज उठे, फिर भी उसमे कुछ दर के लिए एक ऐंची-तानी खुशी तो मिल ही जाती है, जब कभी पानवाला प्रोफेसर सा'ब कहकर कम-से कम एक पान खाते जाने का अनुरोध करता है, या कि बहन की चिट्ठी आती है जिसमे कहा गया होता है कि जहनी काम हर किसी के बूत का नही और इसे करनेवाले को अच्छी गिजा लेनी ही चाहिए। इस पस्ती का ता ओर छोर ही नही था। सत्तर को पार की हुई बाबू की उम्र, पन्द्रह साल पुराना ब्लडप्रेशर मधुमेह और अब फालिज का यह जोरदार हमला। किसी भी डॉक्टर ने उनके ठीक होने की पक्की आशा नही बँधायी थी। उसने भी नही, जो बहन का मेडिकल कालेज मे सहपाठी रह चुका था और इस नाते हर राउण्ड पर एक बार झाँक जाया करता था। सिर्फ दूर के रिश्ते की एक बुआ न, जो शुरू मे खबर पाकर भरी दुपहरी मे बस से अस्पताल आयी थी कहा था कि कही मे शेर की चर्बी मिल जाय, तो सुन्न हुए सुन्न अगो म उसकी मालिश से शर्तिया लाभ

बहन को उसन चिट्ठी मे सब हाल लिख दिया था। छुपाने-जैसा उनके

बीच कुछ था भी नहीं और उसके पत्र पाकर बहन के तड़प उठने या कलपने-जैसा भी कुछ रह कहा गया था। कम से कम अब इस वक्त, जबकि वह अपने पेचीदा तलाक के मसले से उलझती, दूर फिलाडेल्फिया की परदेसी कचहरियाँ खटखटा रही थी। उसका नीग्रो पति, जो सिर्फ बेकारी का सरकारी मेहनताना खा रहा था, अपनी डॉक्टर पत्नी से तलाक के एवज में भरपूर हरजाना ऐंठने पर उतारू था और बहन कुछ अपने चुप्पेपन और कुछ पति के कांइयां पेंचों के मारे जरूरी हमदर्दी का वातावरण नहीं बना पा रही थी। वैसे लिखा था बिचारी ने कि कुछ खर्चा भेजेगी, पर उसे खास उम्मीद न थी।

क्या हाल हैं अब ?" कालेज में उसे देखते ही सब हमदर्दी से पूछते तो वह सुकड़ता हुआ बुदबुदा देता कि वैसे ही है। इतनी नम, दयालु हमदर्दी और कुतूहल अभी तक उसने अपने ऊपर कभी नहीं मेले थे। ऐसे क्षणों में उसे अपना दो कमरे का घर बहुत याद आया करता। घर, जैसाकि वह माँ के जाने और बाबू के वापस आने के दरम्यान था। अपने सारे पपड़ियाये रोगन और मकड़ी के जालों के बावजूद। चुप्पा, प्रश्नहीन आकांक्षाहीन अपेक्षाहीन—अपने नम्बर ग्यारह के चश्मे और पीठ के हल्के कूबड़ को लिये-दिये जिसकी ठण्डी हरी चूनेदार गहराइयों में गुड़प होने को वह कतई आजाद था। आह ! कब जा पायेगा वह वापस रहने को उस घर में ? रात को वह करवट लेता तो अस्पताल की चारपाई पसलियों की तरह चुभती थी। और सुबह ठीक साढ़े पाँच बजे जमादार जगा जाता था—'टट्टी-पसाव का बतन निकालना, साब !"

उसके नौकरी में लगने के बाद यह पहली बार बाबू घर आये थे। और बस दो दिन बाद ही यह हो गया। "आखिरी समै की मिट्टी अपने ही यहाँ" वगैरह लोगों ने कहा था। पर उसे खास यकीन वकीन नहीं हुआ। अगर बाबू बोल सकते तो अपने सूखी तरोई-से झूल आये जिस्म के बावजूद शायद बहन के पास वापस अमरीका जाने को कहने लगते। अब तो उनका ग्रीन कार्ड भी बन गया था न ! फिर अमरीका घूम आने के बाद हिन्दुस्तानी अस्पतालों पर उनका विश्वास कतई नहीं रहा था। वैसे अस्पताल ही क्या, किसी भी हिन्दुस्तानी चीज पर उनका विश्वास नहीं था, शुरू से ही।

"मुल्क चलाना जानता है तो बस अंग्रेज," अपनी अंग्रेजी स्कूल की हेडमास्टरी के दिनों की याद करते हुए वे यही कहते। "हिंदुस्तानी की तो नस नस में जाहिलपना और कमीनगी होती है।" अपने दोनों मातृहीन बच्चों को उन्होंने इसीलिए अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाया था कि उनके यहाँ से छूट भागने का मार्ग प्रशस्त हो पाय। बहन हमेशा से जहीन थी। जहीन सुंदर, मुहफट, दबंग। उसके बाल मेमों जैसे भूरे, और रंगत बाबू-जैसी चक्क सफेद थी। वह खुद माँ पर पड़ा था। सँवलाया, मुनहुना सा जिस्म, पतली आवाज, जिसकी अंग्रेजी पर बढ़िया स्कूल भी वह डैल कार्नेगीदार सान नहीं चढ़ा पाया था जो लोगों को प्रभावित करती है, दोस्त जीतती है। बाबू को उससे कोई आशा नहीं थी वह जानता था। इसी से बहन के बुलाने से जब वे तुरंत अमरीका चले दिये तो उसे अचरज, खुशी या शोक जैसा कुछ भी नहीं हुआ था। शायद वह जानता भी रहा हो कि एक दिन ऐसा ही होगा। घर का एक हिस्सा उसके लिए खाली था ही। खर्चे के लिए बाकी घर का किराया था, उसकी रिसर्च की ग्राण्ट थी। सबके जाने के बाद वह अपनी किनारों में चैन से गुडुप हो गया था। पर रह कहाँ पाया?

उसने आजिजी से ऊपर ताका। रमाकान्तजी प्रश्नसूचक निगाहों से उसे देख रहे थे। वे सीनियर प्राध्यापक थे और संस्कृत पढ़ाते थे। हर तरह का निजी सवाल पूछ पाने लायक भारतीय बुजुर्गियत उन पर हरदम तारी रहती थी। 'कैसे हैं पिताजी?' उन्होंने रजिस्टर रखा और तर्जनी के ऊपर का दाद हौले हौले खुजलाने लगे। प्रश्न उसकी चुप्पी के बावजूद जवाब की प्रतीक्षा में टँगा रहा।

"वैसे ही हैं," वह देर बाद जैसे कुएँ के भीतर से बोला। एक गुनगुनी पस्ती अचानक उसके टखनों से दिमाग तक छा गयी थी। खिड़की के बाहर धूप कैसी भली लगती थी। कहीं एक चिड़िया चहचहायी फिर चुप हुई। काँच पर एक मक्खी फिसल रही थी बज ज ज। उसने जम्हाई ली तो आँखों में पानी आ गया। उसे अपने घर का पुराना पलंग याद आया, जिसके गिलाफ सनलाइट साबुन की महक लिये होते थे, जिस दिन

वह उन्ह् बदलता था।

'आप ज्योतिषशास्त्र मानते हैं ?" रमाकान्तजी पूछ रहे थे। उसने कहा कि वह इस बारे म जानना-वानना नही ज्याद सो

'कई बार ग्रह शान्ति करा लेन से भी कष्ट निवारण होता है," शायद ऐसा नीद और हल्के पसे के दरम्यान रमाकान्तजी ने कहा। और यह भी कहा कि "वैसे तो सब ऊपरवाले के हाथ म है, पर अपना कतव्य तो करना ही हुआ, है कि नही ? पितृदाय जो हुआ—वैस अग्रेजीवाले ये सब मानते-ऊनते तो नही "

"नही ऐसा तो नही।' उसने हल्के से प्रतिवाद किया, "सिफ यह कि उम जानकारी नही इन सब चीजों की।"

'तो क्या नाम, हम देंगे ?' रमाकान्तजी ने तुरत एक कागज झपट लिया और उस पर मनोयोग से अपनी मोटी मोटी लिखाई मे नाम पता लिखकर उसकी ओर बढा दिया—"ये हमारे पुराने परिचित हैं। ज्योतिष तो जानते ही हैं—भृगुसंहिता भी बहुत बढिया बाँचते है। पुराने आदमी हैं, पूछने पर कोई भी गली मे पता बता देगा।" काम खास था नही, पर्ची जेब मे उडसकर वह उठ खडा हुआ। जाये, एक दफा घर मे भी झांक आये।

घर वह आजकल सिफ पतलून कमीज बदलने और डाक देखने जाता था। क्लास परीक्षा की तैयारी के लिए बन्द कर दी गयी थी, सो वह सब काम भी नही था, धुले कपडा की नम तह खोलते हुए उसे हलका-सा दुख हुआ। कभी वैसे फुरसत से वह कपडे बदलता, या छुट्टी के रोज देर तक उठना टालता जाता था, कसे देर तक मल मलकर नहाते हुए मुँह से पानी की पिचकारियाँ छोडता फोकट मे मुदित होता रहता था ! ठण्डे और बडे-से नहानघर मे अम्मा की शादी के पीतल के दो बडे गगालों मे ठण्डा पानी भरा रहता। लोटा पुराना, बडा और मुरादाबादी था। खूब नहाकर खूब चूनेदार दो पान, फिर क्या था ! चटपट दो चार लोटे डालकर उसने इस वक्त काम पूरा किया। एक बटन टूटा था, टाँककर कपडे पहनना खत्म ही कर रहा था कि कुण्डी खडकी। पीछेवाले किरायेदार के पिता थे। 'कैसे हैं ?" उन्होंने बाबूजी के लिए पूछा। उसन दैनिक स्वास्थ्य बुलेटिन दिया। पेशाब उतर रहा है, जानकर वे निद्वन्द्व हुए। दर तक सिर हिलाकर कहते

रहे "बस पेशाब तो नियमित रूप से उतरना ही चाहिए, गुर्दे चलते रहें, तो आस बँधी रहती है। आस बड़ी चीज है बेटा।" उन्होंने उसके कन्धे बड़ी बुजुर्गियत से थपथपाये, "शाबाशी है तुम्हें, पितृदाय निभा रहे हो। वरना आजकल के जमाने में..." उसे हल्की खीज-सी हुई। इतना तत्त्वज्ञान करने लायक आत्मीयता तो उनसे थी नहीं, आज मौका पाकर चढ़ दौड़े।

वह लायब्रेरी से दो चार हल्के उपन्यास लाया था और सोच रहा था कि अस्पताल जाकर पढ़ेगा। अगर बाबू ठीक ठाक रहे तो। "अच्छा चलूँ," उसने हाथ जोड़ दिये। वे शायद और मार्गदर्शन करना चाह रहे थे उसका, पर उन्हें जाना ही पड़ा। उसने किताबें हाथ में ली और ताला लगाने लगा। चाबी घिस गयी थी और ताला बन्द होने में हमेशा देर लगती थी। जब चाबी जेब में डाली, तो कुछ सरसराया। उसने देखा, रमाकान्तजी वाला कागज था। वह सड़क अस्पताल के रास्ते में पड़ती थी, बस फर्लांग भर भीतर को मुड़ना होता। क्या करे? इन्हें भी आजमा ले क्या? स्कूटर को झटके से स्टार्ट करते हुए उसने सोचा, चलो यही सही। पन्द्रह दिनों में दवाइयाँ तो सब आजमा ली गयी थीं, अब तो पीठ और कूल्हों पर रुपये बराबर घाव भी पड़ चले थे, जिन्हें लेकर डॉक्टर और परेशान थे। पितृदाय! रमाकान्तजी भी कहते थे इसे, चलो ठीक है।

अभी एकदम गर्मी तो नहीं आयी थी, पर आ ही चली थी, ऐसा कहा जा सकता था। पानी की उम्मीद थी नहीं। कमर के नीचे में कागज चिपकाना होगा, उसने एक साइकिल से कतराते, उनींदे आलम से सोचा। पर वह तो तब जबकि घर लौटना हो। वह फिर उदास हो गया। गली फाउण्टेन-पेन की एक दुकान के सामने से मुख्य सड़क को छोड़कर भीतर मुड़ती थी। दुकान के ऊपर एक विराट पेन लगा था, टीन का बना हुआ। स्याही से लिथड़े कपड़े की एक लीर काउण्टर पर पड़ी थी और दुकानदार ऊँघ रहा था। स्कूटर की आवाज से भी उसने कोई उत्तेजना या उत्साह नहीं व्यक्त किया। बगल में एक छोटी तख्ती पर गली का नम्बर था—सत्ताईस। यही गली थी। नीचे उकड़ूँ बैठा एक आदमी पेशाब कर रहा था। वह बगल की

परचून की दुकान के पास रुका। स्कूटर शायद भीतर जाये नही, उसने उसे दुकान के सामने रखकर ताला लगाया और काउण्टर के सामने जा खडा हुआ।

उस पुरानी और अँधेरी दुकान मे कई चीजा की महक भरी थी। धूप-भरी आखो की चौध उतरने से पहले ग ध चीजा का अता पता दे जाती सुतली के छीकदार बोरे, सूती धनिया, मिर्च, चावल, चाय और सौंफ। दुकानदार बूढा था और उसके मोटे चश्म के पीछे उसकी मोतियाबि दी निगाह बेडौल और धुँधली थी। उसके सिर के पीछे के कैलण्डर म एक गदरायी लक्ष्मीजी रुपया की अथाह वर्षा करती मुसकरा रही थी, पर यहाँ ऐसा कुछ भी न था। जो भी था, हाथी या कमलया रुपया, वह उस छापे म ही सीमित था। तराजू सीधा करत दुकानदार ने ठोडी से भीतर को इशारा किया, "भीतर को जाकर बम्बे के पास से बायें मुड जाना—सैंन बोरड लगा है।"

'इधर ही से ?"

'और नही तो किधर से ?" दुकानदार गद्दी उठाकर रेजगारी गिनने लगा। उसका मन हुआ कि दे कमबख्त को एक झापड और सीधा वापस चला जाये। जा॥ कहाँ फँसा दिया रमाकान्तजी ने, बात का सीधा जवाब नही दे सकता था क्या ? पर वह बाहर ही निकल रहा था कि दुकानदार ने कफ से घरघराती आवाज लगायी— 'ऐऽ मुनीऽऽ !" खम्भे के पास एक ढीठ आँखोवाली लडकी एक तेलिहा कागज मे कुछ लिये चपर चपर खा रही थी। वही मे चीखी—'क्या है ?" उसकी आवाज खूब ऊँची और कुछ-कुछ फटी हुई थी। "जा जरा इ ह अपने याँ पौंचाई आ।" दुकानदार ने कहा।

'जाओ ये पौंचा देगी," उसने उमेश से कहा। अब कोई चारा न था। मन मारे वह लडकी के पीछे हो लिया। लडकी कम से-कम तीन साल पुराना उटग फ्राक पहने थी। उसके पैरो मे मैल और चोटा की पर्तें सी जमी थी। पहल उसने कागज गुडी मुडी करके नाली मे फेंका, फिर हथेली के पीछे से मुह पाछा फिर बोली, "चलो !" वे दोनो चल पडे। 'जरा स्कूटर का ध्यान ' उसने दुकानदार से कहा। उसने सिर हिला दिया, या शायद नही। गली के भीतर दोनो तरफ खुली नालियाँ थी और उनसे बीभत्स सडाँध उठ रही थी। जगह जगह पाखाने की ढेरियाँ थी, एकाध दरवाजे की ओट से

साँवले निष्प्रभ चेहरे अनिच्छा से झाँके भी, फिर सिमट गये। धूप तेज थी। वह पाँयचे बचाता चलने लगा। खम्भे के पास से वे लोग मुड़े। पुराना, खपरैल की छत का चूने से पुता मकान था। दरवाजे गहरे फीरोजी रंग से पुते थे। "येई है," लड़की ने कहा और एक टाँग पर कूदती हुई वापस जाने लगी। दरवाजा बन्द था। उसने कुण्डी खड़कायी। कुछ देर बाद भीतर से किसी के भारी पैर रगड़ते हुए चलने की आवाज उभरी। उसने दोबारा कुण्डी खड़खड़ायी। "खोल रहे हैं।" भीतर किसी ने धीमे धीमे दो-तीन चटखनियाँ खोलीं, दरवाजा फाँक-भर खुला।

"आप कौन?" दरवाजा खोलनेवाला साठेक साल का झुराया हुआ वृद्ध था। नंगे बदन, बस धोती पहने, कन्धे पर यज्ञोपवीत, दरवाजे पर रखे हाथ पर एक चमकती हुई अँगूठी।

उसने रमाकान्तजी का नाम लेकर बताया। इस बार दरवाजा पूरा खुला। "आइए, भीतर आ जाइए।" स्वर अचानक मुलायम हो गया था। 'आजकल दरअसल होली का चन्दा माँगनेवाले बहुत आ रहे हैं। एक ही मुहल्ले में सात होली कमेटियाँ! कभी देखा, न सुना। न दो तो गाली-गलौज पर आमादा हो जाते हैं। आप बैठिए, मैं अभी आया।'

वृद्ध भीतर गये। वह अपने को सहेजता हुआ कमरे की उन दो जर्जर कुर्सियों में से एक में बैठ गया। दीवारों पर जगह जगह ज्योतिषाचार्य के सर्टिफिकेट टँगे थे, एक आले में कुछ पुरानी प्लास्टर की मूर्तियाँ थीं कुछ मिट्टी के खिलौने—सेठ-सेठानी, बूढ़ा-बुढ़िया, बैण्डवाले! किसी का हाथ नदारद था, किसी का मुँह। कमरे पर भरसक यत्न से ढंके हुए दारिद्र्य की छाप साफ थी। उसे खूब प्यास लग रही थी, क्या करे? वह उनसे पानी माँगे? उसने ससंकोच सोचा। खिड़कियाँ बन्द होने से कमरे में एक धूलिहा गन्ध भरी थी, जिसमें कई पुरानी बासें मिल गयी थीं—छितराये बिस्तरे, पसीने, धूप बत्ती, चाय और चमड़े के जूतों की। भीतर एक नल खुला, बन्द हुआ। उसकी प्यास पानी की आवाज पाकर और भी तेज हुई। 'जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते" हाथ में चार धुआँती अगरबत्तियाँ लिये वृद्ध फिर कमरे में आये। उन्होंने घर की धुली कमीज ऊपर से और पहन ली थी—मन्त्र

बुदबुदाते हुए उन्होने कमरे के चार छेदो मे अगरबत्तियाँ ठूँसी और हाथ कानो पर लगाकर आँखें मूद किसी अदृश्य शक्ति को प्रणाम करने लगे। उसे खीज हुई। ऐसे लटके उसे हमेशा उबाते रहे हैं। सामान्य ग्राहको को प्रभावित करने मे इनके आजमूदा नुस्खे होते हांगे। पर वह यूँ ठगे जाने से रहा। उसने अचानक अपने को आश्वस्त और मजबूत महसूस किया। पहले ठोक-बजाकर इनको जाँच ले, फिर काम बतायेगा। कोई किसी का एहसान थोडे ही है, अरे उन्होने कहा तो चले आय, पर खुद परखे बिना थोडे ही

"कहिए, क्या सेवा करूँ आपकी ?" वृद्ध दूसरी कुर्सी पर बैठकर उसे ताक रहे थे। बूढो की अपेक्षा भरी यह कुरेदती दृष्टि उसे हमेशा हक्काबक्का जाती है, यानी भीतर से लाल गुस्सा बकबका रहा हो, उसके मुह स दीन गुसाइ वाल ही फूटेंगे। उसे अचानक अपनी बेवकूफी पर गुस्सा आने लगा। पढा लिखा होकर भी इस सबमे फँसने आ गया, क्या जरूरत थी ?

"जरा पानी मिलेगा ?" उसकी आवाज कुछ ज्यादा ही रूखी थी शायद, "जरा चलते चलते गर्मी "

"हा-हाँ, अभी लीजिए —" वद्ध कुर्सी से उठे—धीमे-धीमे जैस बदन जकड गया हो। बाबूजी भी ऐसे ही उठते थे, जोड क-जोड बदन को सीधा करते हुए, "माफ कीजिएगा, आते ही तकलीफ दी।" उसने मुलामियत स कहा। वृद्ध ने शायद सुना नही। वे तब तक पर्दा उठाकर भीतर जा चुके थे उसने पाया कि वह अपने अँगूठे का नाखून कुतर रहा है। यह उसकी पुरानी आदत थी।

पानी ठण्डा था और सुराही की महक लिये। बडा सा गिलास पीतल का था और घिसते घिसते उसक किनारे चाकू की धार की नाइ पतले हो चुके थे। एक साँस मे पानी पीकर उसने गिलास रख दिया।

'मेरे पिताजी बीमार हैं दरअसल। उनके ही बारे मे प्रश्न "

'नाम राशि ?'

"उनका तो पता नही।"

'उनका नही, आपका।"

"कर्क राशि मकर लग्न।"

'हूम्म! टाइम दखिए जरा। अभी का।" उसने टाइम बताया। "जरा वो दवात दीजिएगा।" वृद्ध न एक कागज खींच लिया और रोशनाई मे डुबोकर पुराने कलम मे उस पर कुछ रखाएँ खीची, गुना, फिर लिखा। फिर उसे रखकर पीले वस्त्र म बँधा एक बस्ता सा उठाया और गठिय म सूजी उँगलिया से उसकी गाँठ खोलने लग धीमे धीमे। कमरे का धुधला पन अगरवत्ती की गन्ध, पुराने धूलिया कागजा की सरसराहट। उसे लगने लगा, जस वह जमीन के नीचे किसी तलघर मे बैठा हो। फिर उस बतरतीब खयाल आने लगे—' पिताजी को "

वृद्ध ने हाथ उठाकर बोलने को मना किया और आँख बन्द किये कुछ बुदबुदाकर पोथी मे बँधे ग्रन्थ का पन्ना सिर पर छुआने लग। वह हाठ भीचे चुप रहा, पर उसके भीतर एक चिडचिडाहट फिर पनपने लगी थी। साला बताने नही देगा कि मज क्या है तो दवा क्या खाक

'आजकल शुक्र और राहु दोना ही लग्न स आठवें हैं, यह अन्तर शुभ नही।" वृद्ध ने अपना लिखा कागज उठाया और चुधियायी आँखो से कुछ पढा। "वतमान मे गोचर मे इसी स्थान पर शनि और राहु भी सन्धि मे चल रहे हैं और मगल चतुथ दृष्टि से शनि को दख रहा है, जो उसका नैसर्गिक शत्रु है। अत मानसिक और शारीरिक पीडा सम्भव है। पिताजी का स्वास्थ्य तो नम चलेगा ही, साम्पत्तिक हानि भी सम्भव है।"

'दखिए जाहिर है कि तक्लीफ है जभी आपके पास आय हैं। मेरा सवाल यह नही था "

'डॉक्टर पुलिस और ज्योतिषी के पास अच्छे दिनो मे कौन आता है? क्या?' वृद्ध हँसे तो उसने देखा कि उनके अधिकाश दाँत गायब हैं और जो बचे हैं वे भी अब-तब की हालत मे हैं। हँसी के वेग से वृद्ध खाँसने लगे। फेफडो से उठती हुई बलगमी खाँसी। उस घिन-सी आन लगी। बेकार इनकी ले द म पडा है यह तो उसे खुद ही मालूम है। है कि नही?

आप कहे तो मैं भृगुसंहिता की प्रश्न कुण्डली के आधार पर व्याख्या शुरू करूँ' वृद्ध फुसफुसाय। खाँसी का वेग रुकने के बाद भी आवाज अभी मद्धिम थी।

उसने अपने को सयत कर स्थिति की बागडोर हाथ म ली—' देखिए, पहले मुझे बता दें कि आप फीस कितनी लेंगे, क्या-क्या बतायेंग ? और इस पूरे, अम्म विधि विधान मे कितना समय लगेगा ? मैं नौकरीपशा आदमी हू, हर बार छुट्टी लेकर यहा आना मेरे लिए सम्भव नही । मेरा घर भी दूर पडता है । आप कुल एक मुश्त रकम बता दें, तो मैं सोच लू ।" इतना कहकर उसने एक खिसियाई राहत महसूस की । इन लोगा से पहले ही साफ बात कर लेना ठीक रहता है, वरना अच्छे कपडे देखें तो लगते है चौगुने दाम कूतने । वह कल का जाया नही है, जो इनकी नस न पकड सके । वाबू भले ही उन्हें बोदा समझते रह

' सो तो है ।" वृद्ध ने एक घरघराती उसाँस ली, "समय कम है, काम सभी का जरूरी होता है ।" उसने चट से सिर उठाया, पर वृद्ध के चेहरे पर व्यग्य-जैसा कुछ भी नही था । वे आँखें बन्द किये बोल रहे थे ' ससार म लोग जो कष्ट भोगते हैं न, वह हमेशा अपने ही लिए नही भोगते । समझे आप ? अपने मित्रो और शत्रुओ दोनो के लिए हम भोगते हैं—इसी से आप जो साधना या अनुष्ठान हमारी माफत करायेंगे, वह आपकी इच्छा से युक्त होकर आपके पिताजी को प्रभावित करेंगे ही—इसमे शक नहीं ।"

' वह सब तो ठीक है, मैंने आपसे रेट पूछा था ।"

"देखिए " वृद्ध भेद भरे ढग स आगे झुके, ' समय का आप लोगो के पास अभाव है । जो भी करना है, जल्दी ही करना होगा । है कि नही ? तो यहा की शान्ति के लिए जो अनुष्ठान वैसे एक हफ्ते या दस दिन तक करना होता है, उसे मुझे चौबीस घण्टो मे ही करना होगा ।"

"यानी आप फीस ज्यादा लेंग, यही न ?" उमेश ने रुखाई मे जोडा ।

"च्च च्च च्च, आप फीस की ही क्यो सोच रहे हैं ? मैं तो आपको बता रहा हू कि क्या क्या करना होगा, फिर आप सोच लें "

चर—दरवाजा एक फाँक खुला । उसके पीछे से एक जोडा कौंदर्यी आखा ने कमरे का मुलाहिज़ा लिया । यह वही छोकरी थी, जो उसे यहाँ लायी थी ।

"जा सुरमती, अभी भाग जा, यहीं तो " भड से दरवाजा भेडकर शक्ल ओझल हुई । वह वृद्ध की लपेट भरी बाता स उकता चला था । उसे

गहरा सशय होने लगा कि वह जानता वानता भी होगा या महज

वृद्ध ने शायद इसे भाँपा, "देखिए, आपके मन म अभी काफी सशय है। है कि नही ? चलिए मैं आपको दिखाता हूँ कि इस शास्त्र की महिमा क्या है ! ठीक ? फिर आप जैसा समझें।"

उसने सिर हिला दिया। वृद्ध ने कुछ बुदबुदाते हुए धीमे धीमे भृगु-सहिता के जजर पन्ने खोल लिये और सस्कृत का उल्था कर बताने लगे—उनकी उँगलिया गठिय से सूजी थी और आँखें बार-बार पानी से भर आती—शायद रोहो की तक्लीफ रही हो।

"जाति के ब्राह्मण हैं ?"

'जी हाँ।"

'पैतक व्यवसाय—अध्यापन ?"

"जी हाँ।'

"माता का असमय निधन पिता के प्रति मन मे एक भय का भाव "

"हूँ।"

"ग्यारह वप की अवस्था मे धातु के वाहन से टकराकर चेहरे के बायें भाग पर व्रण है ?'

उसने बायी कनपटी के उस लम्बे घाव पर उँगली फिरायी। वह ग्यारह वप का था और स्कूल की सीढिया से फिसलकर नीचे पडी किसी साइकिल पर गिरा था, पाँच टाँके आये थे।

'भगिनी तु " वृद्ध कुछ अटके, "बडी अजाब बात लिखी है, यदि आप बुरा न मानें तो पढ़ू।'

उसके माथे पर पसीना चुहचुहा आया था, "पढिए न !" उसकी आवाज भिची हुई थी।

'भगिनी म्लेच्छ कुल म विवाहित होगी और उसका पति, यानी आपका जामाता शूद्र कमरत, महाव्यभिचारी और पत्नी विमुख "

उसकी आँखों के सामने सुमति का उदास चेहरा तैर गया। उस हरामखोर जैफरी ने अपनी डॉक्टर पत्नी से भरण पोषण पाने की दरख्वास्त ही नहीं दी

थी, यह भी कहा था कि नशीले द्रव्यो का चस्का उसको उसकी डॉक्टर पत्नी ने ही लगाया था और अब वह किसी काम के लायक न रहा था। 'सोचती हूँ सब छोडकर वापस हिन्दुस्तान लौट आऊँ।" सुमति ने लिखा था, 'प्रैक्टिस का क्या है, कही भी चल जायेगी।" पर बाबूजी भभक उठे थे, "इस दलिद्री देश मे आकर क्या अपना सिर खाती? कहाँ तुम्हे वहाँ आने को लिखती, उल्टे खुद लौटकर इस नरक म आने को तैयार थी। मैंने मना कर दिया एक-दम। फूलिश सेण्टिमेण्टल गल। आय सैड नो।" सो बाबू ने मना कर दिया और सुमित नही आयी। क्या पता, कही उसे खुद भी नशीले द्रव्या की लत न पड गयी हो?

"एक गिलास पानी और मिल सकेगा?" उसके कानो को अपनी ही आवाज अजीब कनसुरी और रिरियायी हुई लगी। वृद्ध फिर उठे और बाहर गये। घर मे शायद उनके अलावा और कोई नही रहता था। कही कोई आहट, फुसफुसाहट, कुछ नही। हो सकता है, घर के लोग दोपहरभर को कही बाहर गये हो।

उसने पानी का गिलास थाम लिया और सहरा सहराकर पीने लगा, जैसे उसकी जान का एकमात्र सहारा वही हो। पीकर उसने गदेली से मुह पोछा, तो उसे वह छोटी सी लडकी याद आयी। क्या नाम था उसका? हाँ, सुरसती।

'वह छोटी बच्ची?" उसने बाहर इशारा किया।

'हाँ, मेरी धेवती है," वृद्ध ने कहा। वे ताँबे की दन्त-खोदनी से अपनी दन्तपंक्ति का रहा सहा भाग खोद रहे थे, 'बताइए, क्या निश्चय किया आपने?"

उसका मन एक अजीब तरह से निश्चिन्त सा हुआ—चलो कोई ता है इनकी देख भाल को। 'ठीक है, पूजा आप कर डालिए। पर कितना हुआ, ठीक-ठीक बताइएगा?" उसने अपने पस की ओर हाथ बढाया। क्षण भर को हाथ बढाते बढाते उसका सशय फिर उभरा, फाँस लिया न बूढे ने जाल म? खैर, पर्स निकालकर उसने हाथ मे लिया। "कितना?'

वृद्ध की आँखें पस पर निनिमेष जडी थी— पूजा-सकल्प का इक्यावन हुआ, सामग्री और दक्षिणा का तीन सौ। एक लाख जप होगा, सौ और—

कुल चार सौ इक्यावन होगा "

"क्या ?" उसका मुह खुला रह गया। "तीन सौ की सामग्री ! क्या क्या लेंगे आप ?"

"लिए पूजा तो आपको ही करानी है। है कि नहीं ?" वृद्ध ने मुह बिगाड़कर एक खट्टी सी डकार ली और सीना मलने लगे। बाजी अब उनके हाथ मे थी और उन्हे यह अच्छी तरह मालूम भी था। "आपके हमारे काम मे सामग्री थोडी घटायी या हटायी जा सकती है, पर पूजा-सामग्री तो एक दम उन्होने हाथ से कमल का आकार बनाया, "सम्पूर्ण होनी ही चाहिए, वरना क्या फायदा ? गरज तो हमी को है। है कि नहीं ?" पोरो से पोरो को टिकाकर व भेद भरे सहयोगी भाव से उसे ताकने लगे, "मज तो बडा है ही। उम्र भी हुई—सामग्री मे सभी होगा—घृत, केसर, कस्तूरी अगुर, चन्दन वैसे आपकी इच्छा।' व तोते की तरह आखें पलटकर छत को ताकने लगे। उसने पस से सौ-सौ के चार नोट निकाले, एक पचास का और एक चाँदी के रुपये का सिक्का, और सामने रखकर उठ खडा हुआ।

"तो उसकी रसीद या कुछ " उसने हाथ से हवा मे रसीद लिखने की मुद्रा बनायी।

"रसीद क्या करोगे ?" वृद्ध वत्सल भाव से हँसे, "मरीज का ठीक होना ही रसीद नहीं होगा क्या ? आज फाल्गुन की द्वादशी है—आज ही से जप सामग्री जमा करके '

'क्या मैं आकर देख "

"क्या करेंगे ? वैसे भी न तो मन्त्र आपको समझ आयेंगे और न ही विधि, क्या ?' वृद्ध उठ खडे हुए, 'ऊपरवाले का भरोसा रखिए, सब ठीक हो जायगा।'

वह बाहर निकला तो दिन ढल चुका था पाँयचे बचाता वह दुकान तक पहुँचा। उसके स्कूटर के पास कुछ बच्चे कंचे खेल रहे थे। उन्ही मे वह उटंग फ्रॉकवाली झबरी लडकी भी थी। उसे देखकर वह भेद भरे ढग से मुस्करायी और फिर अपने दोस्त से खुसर-पुसुर कर कुछ कहने लगी। वे

दोना उसे बिलौटो की तरह घूर घूरकर हँस रहे थे। हाठ भीचे भीच उसने स्कूटर स्टाट किया और बाहर आ गया। उस सँकरी तग गली म अभी जो घटा था, बाहर चौडी सडक मे आकर एक दु स्वप्न सा लग रहा था। सिवा इसके कि वह चार सौ इक्यावन रुपये गिन आया मूर्खों सरीखा, न कोई रसीद, न पता। बूढा मुकर जाये, तो वह क्या करेगा ? लानत है उसके पढे लिखे होने की सर-आम मूडा गया और जानते-बूझते भी पमा उगल गया। ठीक कहते थे बाबूजी, "कोच्छ नही होन का उसस।" बाबूजी की बीस साल की पैनाई हडमास्टरी निगाह ने तभी उसकी वक्त कूत ली थी, जब वह आई ए एस की परीक्षा के ख्वाब देख रहा था। "अपनी औकात और दिमागी कूवत देखकर ही ख्वाब पालन चाहिए," वे प्राय उसे सुनाकर कहत थे। वही हुआ। उसे आँखों की वजह से अनफिट करार द दिया गया। जिस दिन आई ए एस की परीक्षा का नतीजा आया वह मुँह छिपाये पडा रहा, फिर प्राध्यापकी के लिए छाटे मोटे कस्बई कॉलेजो मे आवेदन पत्र भेजने लगा।

तो फिर क्यो चले आये उसके पास बाबूजी ? रहते वही अमरीका की चकमक बस्तियो मे, अपनी चहेती बेटी के साथ। पर शायद व बेटी का तलाक का गडबडझाला खत्म होने पर ही लौटना चाहते थे। छोटा शहर था, जफरी ने अपनी करुणा गाथा को एकाध अखबारो मे छपा दिया था। गरीब के लिए करुणा वहाँ बडी जल्द उमडती है न! गुस्सा भीचत हुए उसने लिफ्ट का बटन दबाया। इतने दिना मे लिफ्टवाला भी उसे पहचानन लगा था—उसे देखकर चुपचाप पाँचवी मजिल का बटन दबा देता।

बाबूजी वैसे ही थे। स्थिर टकटकी बाँधे सामन ताकते। प्राइवेट नस एक अनावश्यक चहक से उनका मुह पाछ रही थी— 'देखिए, आज पिताजी न आधा कटोरी दलिया लिया—एक औंस सूप भी। ऐसे ही गुड बॉय बने रहे तो बस हफ्ते भर मे छुट्टी!" फिर सूई मे दवा भरकर उसने सूखी चीमड बाँह मे भोक दी और स्प्रिट से मलकर यह जा, वह जा।

'पेपर!' बाहर ईवनिंग पेपरवाला लडका खडा था। उसने अखबार लेकर पैसा दिया और भीतर आया। बाबूजी कुछ उक्-उक-सा कह रहे थे।

"क्या है बा'जी ?" उसने नरमाई से पूछा। घडी देखी, शाम के पाँच

कुल चार सौ इक्यावन होगा "

'क्या ?' उसका मुह खुला रह गया। "तीन सौ की सामग्री ! क्या क्या लेंगे आप ?"

"देखिए पूजा तो आपको ही करानी है। है कि नही ?" वृद्ध ने मुह बिगाडकर एक खट्टी सी डकार ली और सीना मलने लगे। बाजी अब उनके हाथ म थी और उ हे यह अच्छी तरह मालूम भी था। "आपके हमारे काम म सामग्री थाडी घटायी या हटायी जा सकती है पर पूजा-सामग्री तो एक दम ' उन्होने हाथ म कमल का आकार बनाया, ' सम्पूर्ण होनी ही चाहिए वरना क्या फायदा ? गरज तो हमी को है। है कि नही ?" पोरो स पोरो को टिकाकर वे भेद भरे सहयोगी भाव से उसे ताकने लगे, ' मज तो कडा है ही। उम्र भी हुई—सामग्री मे सभी होगा—घृत केसर कस्तूरी अगुरु, चन्दन बस आपकी इच्छा।" वे तोते की तरह आँखें पलटकर छत को ताकने लगे। उसने पस से सौ-सौ के चार नाट निकाले, एक पचास का और एक चाँदी के रुपये का सिक्का, और सामने रखकर उठ खडा हुआ।

' तो उसकी रसीद या कुछ ' उसने हाथ से हवा मे रसीद लिखने की मुद्रा बनायी।

"रसीद क्या करोगे ?" वृद्ध क्लान्त भाव से हँसे, "मरीज का ठीक होना ही रसीद नही होगा क्या ? आज फाल्गुन की द्वादशी है—आज ही स जप सामग्री जमा करके '

क्या मैं आकर देख

' क्या करेंगे ? वैसे भी न तो मन्त्र आपको समझ आयेंगे और न ही विधि क्यो ? वृद्ध उठ खडे हुए, "ऊपरवाले का भरोसा रखिए, सब ठीक हो जायेगा।'

वह बाहर निकला तो दिन ढल चुका था, पाँयचे बचाता वह दुकान तक पहुँचा। उसके स्कूटर के पास कुछ बच्चे कचे खेल रहे थे। उन्ही म वह उटग मोहवाली भवरी लडकी भी थी। उसे देखकर वह भेद भरे ढग स मुस्करायी और फिर अपने दोस्त से खुसर-पुसुर कर कुछ कहने लगी। व

दोना उसे बिलौटा की तरह घूर घूरकर हँस रह थे। हाठ भीचे भीचे उसने स्कूटर स्टाट किया और बाहर आ गया। उस सँकरी तग गली म अभी जो घटा था, बाहर चौडी सडक मे आकर एक दु स्वप्न सा लग रहा था। सिवा इसके कि वह चार सौ इक्यावन रुपये गिन आया मूर्खो सरीखा, न कोई रसाद, न पता। बूढा मुकर जाये, तो वह क्या करेगा? लानत है उसके पढे-लिखे होने को सरे-आम मूडा गया और जानते-बूझते भी पमा उगल आया! ठीक कहते थे बाबूजी, "कोच्छ नहीं होने का उससे।' बाबूजी की बीस साल की पैनाई हडमास्टरी निगाह ने तभी उसकी वक्त कूत ली थी जब वह आई ए एस की परीक्षा के ख्वाब देख रहा था। "अपनी औकात और दिमागी कूवत देखकर ही ख्वाब पालन चाहिए," वे प्राय उस सुनाकर कहते थे। वही हुआ। उसे आँखो की वजह स अनफिट करार दे दिया गया। जिस दिन आई ए एस की परीक्षा का नतीजा आया, वह मुह छिपाये पडा रहा, फिर प्राध्यापकी के लिए छोटे मोटे कस्बई कॉलेजो मे आवेदन पत्र भेजने लगा।

तो फिर क्या चले आये उसके पास बाबूजी? रहते वही अमरीका की चकमक बस्तियो मे, अपनी चहेती बटी के साथ। पर शायद वे बेटी का तलाक का गडबडझाला खत्म होने पर ही लौटना चाहते थे। छोटा शहर था, जैफरी ने अपनी करुणा गाथा को एकाध अखबारो म छपा दिया था। गरीब के लिए करुणा वहाँ बडी जल्द उमडती है न! गुस्सा भीचते हुए उसने लिफ्ट का बटन दबाया। इतने दिनो मे लिफ्टवाला भी उसे पहचानने लगा था—उसे देखकर चुपचाप पाँचवी मजिल का बटन दबा देता।

बाबूजी वैसे ही थे। स्थिर टकटकी बाधे सामने ताकते। प्राइवेट नस एक अनावश्यक चहक से उनका मुह पाछ रही थी—"देखिए आज पिताजी ने आधा कटोरी दलिया लिया—एक औंस सूप भी। ऐसे ही गुड बॉय बने रहे तो बस हफ्ते भर मे छुट्टी!" फिर सूई मे दवा भरकर उसने सूखी चीमड बाँह मे भोक दी और स्प्रिट से मलकर यह जा, वह जा।

"पपर!" बाहर ईवनिंग पेपरवाला लडका खडा था। उसने अखबार लेकर पैसा दिया और भीतर आया। बाबूजी कुछ उक-उक् सा कह रहे थे।

"क्या है बा'जी?" उसने नरमाई से पूछा। घडी देखी, शाम के पाँच

बजे थे। "अखबार सुनेंगे ?" वे बार बार शरीर का अशक्त भाग उठाने की चेष्टा कर रहे थे, "पहला पन्ना ?" उसने जेब से चश्मा निकालकर लगाया और पढने लगा—"अफगानिस्तान को चेतावनी चार प्रसिद्ध सटोरिये गिरफ्तार तथाकथित " अचानक बडी जोर के उबाल के साथ उल्टी का एक रेला बाबूजी के नाक-मुह से निकला और चादर पर दूर दूर तक जा फैला। उनकी आँखें कुछ अजीब ढग स टँग सी गयी, और गले से गा गा होने लगी। उसने अखबार दूर फेंका और घण्टी जोरो से दबा दी, फिर तौलिया लेकर साफ करने मे जुट गया। पूरा कमरा खट्टी महक से भर गया था। नर्स आयी दोनो ने कपडे बदले। तमाम जी घिना गया था। चादर बदलकर, खराब हुई चादर उठा ही रहे थे कि डॉक्टर लोग राउण्ड पर आ निकले। इनमे एक वह हँसमुख गुदाज बदन का अधेड उम्र डॉक्टर भी था, जो सुमति का सहपाठी होने से बा'जी के प्रति अधिक सदयता बरतता था। उसके पास से हमेशा हमेशा आफ्टर शेव की बढिया खुशबू आती थी और नर्सों से उसके रस भीने मजाक चलते रहते। बा'जी को चैक कर तकिया थपथपाकर वह बाहर निकल आया। पीछे-पीछे वह भी आया। "देखिए, आपसे छिपाना क्या ? अब तब का ही हिसाब है। आपके घर मे कोई है नही। आप दिन भर बाहर रहते हैं पीठ पर बिस्तर से तमाम घाव बन गये हैं, उनसे और भी खतरा है इफ यू लाइक कुछ दिन यहीं रहने दीजिए—आई नो इट इज एक्सपेंसिव क्या ?" "ठीक है"—वह लौट आया। बा जी नीद और बेहोशी के दरम्यान की भूम म डूब गये थे। वह बाहर बाल्कनी मे निकल आया। इतने दिनो के ही कुल पाँचेक हजार के करीब हो गये होंगे। खबर पाते ही सुमति ने डॉलर भेजने के लिए लिखा था, पर सुमति अगर न भेजे तो वह माँगने थोडे ही जायेगा ? वह भी इस वक्त जबकि वह बेचारी खुद इतनी दिक्कता से जूझ रही है। ऊपर से गधा सरीखा वह चार सौ इक्यावन रुपये उस पण्डित को दे आया। न रसीद, न कुछ। अचानक उसने तय किया कि वह जाकर उससे रुपया वापस ले आयगा। कहीं केसर कस्तूरी के हवन से खून के जमे थक्के पिघलेंगे भला ? उसी की अक्ल मे पत्थर पड गये थे पर मान लो अगर बूढा मुकर गया तो ? स्कूटर पर एड लगाते उसने सोचा तब की तब देखी जायेगी।

रात उतर चुकी थी, गली मे मुडते समय उसने घडी पर नजर डाली—साढे आठ। गली में बत्तियाँ भी नही थी, पर चाँदनी थी। कुछ कुत्ते खूख्वार ढग से भूँके। उसे चौदह सुदयो का खयाल आया—लो, कोढ पर खाज! शनि मगल को देख रहा है—उसे बूढे की बात याद आयी। क्रोध ने ठिकते पैरो मे अचानक तेजी भर दी। चोर कहीं का! स्कूटर को वहीं आड में खडा कर उसने ताला लगाया और आगे बढा। बम्बे से वहाँ तक चुप्पी थी—कही किसी न घी म तडका लगाया। एक छोऽ की आवाज के साथ गली की बदबू को काटती एक मीठी घरेलू गन्ध उठी, फिर बिला गयी। अरसा हो गया अच्छा खाना खाये, नही? वह दरवाजे के आगे थमक गया। वहाँ बडा-सा ताला पडा था। अब? गये उसके रुपये! उसने हताशा से सोचा। क्या करे वह? लौट जाय? नही लौटे, क्यो? कम नहीं होते चार सौ इक्यावन रुपय। पेट्रोल जो फुका सो अलग! क्या कर? कही पास मे पूछे? हो सकता है पूजा की सामग्री लेने बाजार गये हो। उसने बगल की कुण्डी खडखडायी।

"क्या है?"

एक भयातुर नारी-कण्ठ भीतर से कौंधा। एक बच्चा कहीं रोने लगा—"चुप कर!" नारी कण्ठ बच्चे पर बरस पडा। रोना और तेज हुआ, 'कहा न, कौन है?" फिर वही भयपूर्ण स्वर।

"बगलवाले पण्डितजी कहीं गये हैं क्या?" उसने स्वर ऊँचा किया।

'गये होग, हम पता नही।" स्वर बच्चे को चुपाने लगा। वह इधर-से-उधर निरुद्देश्य घूमने लगा। अच्छा फँसाया रमाकान्तजी ने उसे। सोचते होंगे कि छडा है, इसे पैसे की क्या कमी! फिर बहन अमरीका मे है, जहाँ रुपया बरसता है। क्या पता पण्डित से वे कमीशन खाते हो 'क्या ठिकाना? नही, आजकल किसी का ठिकाना नही। उसी जैसे मूख होत है जो उल्लू बन जाते हैं। ये रमाकान्त टाइप के लोग अपना अधेला भी फिजूल खच नही करेंगे—दूसरो से कहेंग भृगुसहिता बँचवाओ। वाह बेटा! क्या कहने! गुस्से से फनफनाते हुए उसने ठोकर स ककड दूर फेंक दिया। तड से जाकर वह फिर उसी दरवाजे पर लगा। इस बार चन्द क्षणो मे ही धडाक से दरवाजा खुल गया। 'क्या है बे? शरीफो का मुहल्ला है य रात गये यहाँ क्या हल्ला गुल्ला कर रहा है ऐं?" एक तगडे गठीले जिस्म का गुण्डा-

टाइप आदमी दरवाजे पर खड़ा था।

'पण्डितजी से काम था। वो मृगुसंहितावाले।"

"पण्डितजी से काऽम था।"

युवक ने उसकी नकल उतारी — 'रात साढ़े आठ बजे साले माँ के खसम भृगुसंहिता बँचवान आयेंगे। पण्डितजी गय काशीवास करन को। ज फूट।"

"कब जायेंग?"

"हमे लिखके नही देगये। अब चलो ' आदमी ने एक कदम आगे बढाया। वह डरता ठोकर खाता खीसियाता वापस हो लिया। उसकी मुट्ठियाँ भिंची हुई थी और आँखो मे अपमान के आँसू थे—देख लेगा सब साला को, सब उसको धोखा देते है, एक एक को गिन लेगा वह।

"टैम से आया करो, बाबूजी—वसे आप तो पहचान के हो, पर सिस्टर हमको डाँटती है।' चौकीदार ने भलमनसाहत स लिफ्ट का बटन दबाते हुए कहा। वह होठ चबाता रहा। कमरे मे सब वैसा ही था। शान्त करुणा। दवा म गँधाता। उसने ऊँघती नस को विदा किया। नाइट लाइट जल रही थी और बा'जी चुपचाप टकटकी लगाये सामने ताक रहे थे, उसी तरह जस वह लिटा गया था। बस सीना भर उठता गिरता। नस की पदचाप दूर होती गयी।

सब तुम्हारे कारण हुआ,' वह कमरे का दरवाजा बन्द कर दबे स्वर म फूट पड़ा, "सात समन्दर पार से मरने को यहा आना था तुम्हे? जन्म भर मुझे नफरत से देखा, फिर मेरे ही मत्थे मरने आय। ठण्डा हुआ जी तुम्हारा मेरा अपमान कराके?' उसके आसू बह चले थे, उसने सुरसती की तरह हाथ से उन्हे पोछा 'पहले अपनी ऐंठ से घुला घुलाकर माँ को मारा फिर लडकी की गृहस्थी चूस खायी, अब मुझे खा लो। मरते भी नही कि पिण्ड छूटे हमारा। अचानक उसने जबान रोक ली और हक्का बक्का ताकने लगा। यह गुबार उसी के मुह से निकला था क्या? और यह क्या? बा'जी हँसे क्या? या कि फालिज से टेढा पडा मुह काँपा? उसके देखते-ही-देखते बस एक हिचकी आयी और बा'जी खत्म हो गये।

कुत्ते की मौत

जब वे उसे लाये थे तो उसकी आँखें बस खुली ही थीं। धुनकी रुई के फाहे सा गदबदा ललछौंहा पिल्ला, जिसका अपना बदन खुद उसके लिए भी एक अजूबा था। हर एक-एक कदम वह लड़खड़ा लड़खड़ाकर बढ़ाता था, अपने पंजों की लचक से अपनी देह का भार टोहते हुए। फिर जब कुछ कुछ भूलते हुए, रेंगते हुए वह हर हथेली में थूथन घुसाकर माँ का स्तन ढूँढन लगा तो अचानक माँ को लगा कि वे लोग उसे जल्दबाजी में ही उठा लाये थे। यह बड़ी खराब आदत थी उन लोगों की। मौके की मुलायमियत से अभिभूत होकर बात की औकात और अपनी जिम्मेदारी की गम्भीरता भुला बैठना। आखिर पिल्ले को वे देखने भर ही तो गये थे। कोई स्टाम्प लगाके दरख्वास्त तो नहीं दी थी कि ले ही लेंगे पर जब देख लिया तो कहने में अजीब झेंप सी लगने लगी कि नहीं लेंगे। हालाँकि वे पिल्ले काफी भद्दे थे सभी। देसी कुतिया के भोंडे पिल्ला का घर ले जाने को जान-बूझकर लाग उन्हीं सरीखे मूर्खों को बुलाते होंगे। माँ मन ही मन अपने को कोसने लगी, पिता भी। उन्हीं के से लोगों के सहारे तो माया संसार को बस में किये रहती है है कि नहीं ? जो हर बार जिन्दगी के सुथरेपने में अपने आप बेवजह एक बेहूदी खलबली मचाकर निरीहता से वह बस एक मुहलत और माँगने लगते हैं, प्यार करने की, तरने की।

"अब क्या खिलाना है इसे ?" गाल पर हाथ रखकर वह बोली। पिता

बच्चा के साथ घुटनों के बल बैठा निहाल हो रहा था। अपनी सारी झुंझलाहट के बावजूद उसने भी अपने आपको धीमे धीमे निहाल होता पाया। यहाँ तक कि अंत में वह भी फर्श पर उकडू बैठकर उसे आ-आ करने लगी।

उस सारी रात पिल्ला न खुद सोया न ही उसने किसी को सोने दिया। जाड़े के दिन थे। टोकरी में बिछे शाल के बावजूद उसे अपनी माँ की बदन की गर्माई नहीं मिल पा रही थी। एक पतली आवाज में देर तक कणक्टू क् क करता रहा जैसे खूब जंग-खाये पहियोंवाली गाड़ी खेंची जा रही हो और वे सब बारी-बारी से मल्लाते और उसे चुपाने के उपाय सोचते रहे। तभी किसी को याद आया कि उसने पढ़ा था कि अलार्म घड़ी के टिक टिक से पिल्ले चुप हो सकते हैं। अलार्म घड़ी लायी गयी। ले-देकर पूरे घर में यही तो एक अलार्म घड़ी थी। माँ हर बार यह बात दुहराती थी जब भी बच्चे उसके करीब से दहलानेवाली तेजी से खेल में मगन गुजरते या पिता उसे चाभी देना भूल जाता। इस बार भी उसने वही बात दुहरायी। तब एक छोटे अँगोछे में लपेटकर घड़ी पिल्ले की बगल में रख दी गयी। कुछ पल वह चुप रहा। शायद घड़ी की टिक टिक से नहीं, बल्कि उनके सजग सान्निध्य से पर फिर यकायक रो पड़ा। कीऽऽ उसके हिलने से अलार्म की कोई कल भी हिल पड़ी शायद और क्षण भर को उसकी 'की की' के ऊपर घनघनाता कर्कश अलार्म भी बज उठा। तब कुछ हँसते, कुछ खीजते कुछ झेंपते पिता ने घड़ी उठा ली। इन सारी नकनीयत पर बेहूदा और नाकाम याब प्रक्रियाओं से गुजरते गुजरते सड़क पर दूधवाला की सायकिलों की खटर पटर भी चालू हो गयी थी।

उफ देखो तो सवेरा हो गया है, अब इस बेहूदा बला को हटा ही देना है—माता पिता ने एलान किया। बच्चे चुप रहे। फिर खेलने चल दिये, समझदारी से।

खेत से घर आते ही बच्चा ने गोली सा प्रश्न दागा, 'इसकी जात क्या होगी माँ ?"

'किसने पूछा ?" पता चला कि इती की मौसी ने। इती का घर उनके घर से सटा हुआ था। भरी भरी छातियावाली औरतों का एक झुण्ड सान्तसकी बालकनी पर मुझे सलवार कुर्ते में, बगैर दुपट्टे के खड़ा-खड़ा पड़ोस पर गीध सी खुर्दबीनी नजर गड़ाये रखता था। वे इती की मौसियाँ या या बुआएँ भी हो सकती थीं, क्योंकि इन सबको वह आण्टी बुलाती थी। एक शायद माँ भी थी शायद, क्योंकि कभी मम्मी की गुहार भी लगती थी। इती के पिता कनखजूरे सी पतली मूछोंवाले एक अधगंजे और बेवजह पुलकित रहनेवाले इनसान थे, जो खिजाब के बल से जाती जवानी की दुम पकड़े अभी तक लटके हुए थे। हमेशा स्कूटर से उतरकर वे अंग्रेजी धुन गाते हुए सीढ़ी चढ़ते थे। उनसे नमस्ते कहो तो हल्लो कहते थे और माँ को देख-कर बड़े अदब से गुडमार्निंग वगैरह भी।

माता पिता को वे फूटी आँखों नहीं सुहाते थे, वे भी और चपाती सी छातियोंवाला उनके घर की वे औरतें भी, जो निरन्तर बुनाई के चीर लहराती हर फेरीवाले के कर्कश स्वर में मजाक और तकरार करती थीं, पर इसके बावजूद दोनों परिवारों में एक सभ्य दुआ सलाम का नाता बर-करार था। 'जात ? अरे कुछ भी होगी," माँ ने किंचित् तल्खी से कहा, 'कह दो कि देसी है। इसकी माँ माथुर साहब के घर में परच गयी थी, सो उठा लाये।' और फिर उसने यह भी कुछ रुककर कहा, 'दुनिया-भर का पिल्ले की जात-पाँत की खबर करना भी ऐसा क्या जरूरी है ? जिन्हें जरूरत हो सो बढ़िया नस्लवाले छाँटके ले आयें, हाँ नहीं तो। अरे, जब लाये हैं तो पालेंगे ही। गृहस्थ के घर में हर किसिम के जीव पलते हैं कि नहीं ?"

सो देखते देखते पिल्ला पल भी गया, नामकरण भी हो गया, लालू। लालू उस्ताद। अपनी छोटी छोटी भूरी आँख सिकोड़कर वह जब देखता तो सच में गुण्डा लगता था।

'क्या बे, जेल जायेगा ?" बच्चे एक लम्बी सुतली फहरा रहे थे। वह भी उसे नाच-नोचकर खेलने लगा, जैसे हथकड़ी छुड़ा रहा हो। माँ ने कहा कि पता नहीं ऐसी भाषा वे कहाँ से सीख आते हैं। खबरदार, पर लालू उस्ताद चोर चोर खेलते रहे। पिल्ला हिल गया था। और फिर से एक बार उनका निर्णय भी।

ज्या ज्यो लालू बढ़ रहा था, उसकी देसी नस्ल भी स्पष्ट होती जा रही थी। गुलाबी और लम्बा थूथन, कुछ-कुछ लोमड़ी का सा चेहरा, झब्बेदार पूछ, और नीचे को दबे कान। पहले बच्चों ने कहा कि उसके कान खड़े होने लगे हैं, अल्सेशियन की तरह पर कुछ शोध के बाद पता चला कि वह चौकन्ना होने पर कानों को खड़े करने का आभास भर देता था। दुम तो टेढ़ी रहनी ही थी, रही। एक बात थी, जो कतई छुप नहीं सकती थी और वह था उसका खौरहापन। या तो कभी उसे किसी सायकिल सवार ने टक्कर मारी थी या फिर किसी ने डण्डे से मारा था, क्योंकि एक बार वह लँगड़ाता-सा घर में आया और कई दिनों की दवाई सिंकाई के बाद ठीक हो पाया।

और इसके बाद वह हर सायकिल सवार या डण्डा पकड़े आदमी का पक्का दुश्मन हो गया था। एक बार माँ घर में नहीं थी तो एक आदमी देरी तक सड़क से उनकी खिड़की को ताक-ताककर चिल्लाता रहा कि इस कुत्ते की खातिर उन्हें कभी जुरमाना देना होगा, वे समझ लें, राह चलना साले ने मुहाल कर रखा है, वगैरह। अब घर के अन्दर लालू सिर्फ रात गये आता था और अपना खाना खाकर अपनी एक निश्चित जगह पर बैठकर गम्भीरता से सो जाता था। और कुत्तों की तरह उससे तुतलाकर बचकाने खेल करो तो वह अपनी पीली आँखें सिकोड़कर हिकारत से हट जाता। खुश होने पर वह खड़ा होकर दुम हिलाता था और कभी कभार माँ का हाथ चाट भी लेता था, पर उसके सिर के पास लाल सुनहरे बालों का जो भँवर था वहाँ वह किसी को हाथ न रखने देता था। कभी भी। मां को भी नहीं।

बैठकखाने में भी खास दाहिने कोने में एक जगह उसने अपने खास अड़ियल ढंग से हथिया ली थी, माँ के प्रतिवादों की ऐसी की तैसी करते हुए। एक दो बार उन लोगों ने उसे वहां से हटाना चाहा, पर गुर्राहट से डरकर हिम्मत नहीं हुई। छोड़ो भी, उन लोगों ने आजिजी से कहा जो भय से उपजती है। माँ और बच्चे धीमे धीमे उससे काफी डरने लग थे पर जब हर सुबह वह कुछ देर बारी बारी से सबके कमरों में जा जाकर और दुम हिलाकर अपनी पारिवारिक सदस्यता का भावभीना सबूत दे जाता था तो उनकी कमजोरी को यही बहुत होता। "है तो वफादार," हर सुबह, उसे देखकर वे कहते और हर सुबह पिछले दिन का पूरा मनोमालिन्य न जाने

कहाँ गायब हो जाता। प्यार मे हार मानने मे आदमी से बढकर नाकामयाब कोई प्राणी नहीं। होने होते घर का कोई सदस्य ऐसा न बचा, जिस पर वह खौंखियाया न हो। इसके सदा तीन-चार बँधे-बँधाये कारण होते थे —एक तो उसकी नींद म खलल पडना, दूसरा, उसके हड्डी चबाते वक्त किसी का पास खड़े रहना और तीसरा, अगर वह सोफे या तखत पर अपना कोना छाँटकर बैठा हो तो उस वहाँ से उठाने की किसी तरह की अधिकृत अनधिकृत चेष्टा। तब एक छन म उसका रुख बदल जाता था —रूप भी। और वह अपने पूवज भेडिया से हूबहू मिलने लगता था। उसके जबडे ऊपर सिमटकर तीखे मासखोरे दाँत बाहर आ जाते, आँखो के पपोटे चढने से आँखें सफेद और पुतलियाँ स्याह हो जाती और गले से एक भीषण घुरघुराहट निकलती बच्चे तो उसके क्रोध के लक्षणा स इतने वाकिफ हो चले थे कि उसका ऊपरी हाठ सिमटत ही तितर-बितर हो जाते, पर अगर कोई नया बाहरी व्यक्ति घर मे आया हो तो जोखिम खडा हो जाता था। शम आती थी, सा अलग। कई लोग जो साफ सीधी बात कह डालने के अपने ठेठ हिन्दुस्तानी गुण म अभिभूत थे, साफ सीधे ढग से कह जाते कि ऐसे कुत्ते का बच्चों के घर मे पलना ठीक नहीं। कमाल है, पढे लिखे होकर भी—पर इसी 'भी पर दो साल गाडी अटकी रही। मा उसकी गुर्राहट सुनकर भी हर राज नियमित समय पर रातब देती रही, पिता अखबार पढनेवाली अपनी नम धूपभरी कुर्सी का मोह त्यागकर बगल की चौकी पर बठ तकलीफदेह कोणा मे अखबार और चाय की प्याली हाँ हाँ करता सँभालता रहा, और बच्चे हर मित्र को लालू के खौरहेपन से आगाह कर, चोरी छिपे अपने हिस्स क बिस्कुट और मक्खन लगी डबलरोटी उसे खिलाते रहे। लालू अब एक भरपूर कद्दावर कुत्ता था। स्पष्ट और निखालिस रूप से देसी और एक मँझोल ढग स गठे कडियल बदन का ऐंठभरा मालिक। प्राय गलिया मे वह देसी कुतियो के साथ घूमता दीखता था और कभी दो दो तीन-तीन रात तक गायब भी रहता, पर घर के बिगडैल नशाखोर निखटटू सदस्य की तरह तब भी उसका आबादाना घर क कोने मे पडा ही रहता। नाराजगी, डर और प्यार के गड्डमगड्डपने म।

तभी एक दिन लालू ने माँ को काट खाया और सब कुछ जनाटे से हिल गया। समय आ गया था कि चीजों के गड्डमड्डपन को दुनियादारी से साफ कर निश्चित किया जाता कि घर में लालू का करना क्या है? हुआ यह कि बरसात के दिन थे और माँ अक्सर लालू के कान और गदन के पास 'टिक' चिपके देखती थी। छोटे छोटे मखमल से कीड़े जो कि खून पीकर अंगूर से गोल और नरम होकर झड़ जाते और एक पुड़िया पीछे छोड़ जाते। हिम्मत कर उस दिन माँ एक टूटी प्याली में मिट्टी का तेल लेकर बैठी और हाथ से चुन चुनकर उन्हें निकालती प्याले में डालने लगी। छह-सात तक तो मामला ठीक रहा और माँ जानवरों की देखभाल और घर की सफाई से अपने को जोड़कर कोई गर्वभरी बात कहने ही जा रही थी कि तभी लालू खौंखियाकर उठ खड़ा हुआ और माँ के हाथ में काटकर चारपाई के नीचे घुस गया। घाव इतना गहरा नहीं था, जितना कि घटना की आकस्मिक क्रूरता का धक्का। थोड़ी देर माँ बैठी रह गयीं, फिर दवा की तलाश होने लगी और हाथ धोया जाने लगा। इस सारी हड़बड़ी के बीच पूरे दिनभर लालू उस्ताद गायब रहे और दूसरे दिन सुबह सिर झुकाये घर के भीतर आये और चुपचाप जाकर कोने में पड़े रहे। माँ उसके पास से गुजरीं तो पूछ आदतन दो तीन बार सलूट में हिली और भूरी पुतलियों में मैत्रीभाव सा कुछ कांपा पर दिलों में हौल बैठ गया था। कल किसी बच्चे को या पड़ोसी को किया तो?

उस शानदार पशुचिकित्सालय का डॉक्टर झुंझलायी भवोंवाला एक मोटा-सा शख्स था। उसने पूरा ब्यौरा सुनकर उँगलियों से भीतर को इशारा किया 'मेरी राय में आप इसे खतम करवा दें तो ठीक रहेगा। स्वभाव तो अब इसका दवा दारू, विटामिन किसी से बदलेगा नहीं। बच्चा का क्या है! बढ़िया नस्ल का दूसरा ला दीजिए दो दिन में पूछेंगे भी नहीं कि कहाँ गया। देशी कुत्ता ही तो है। किसी को काटा तो नहीं इधर इसने?' माँ को स्वीकार करना पड़ा। हाथ में अभी भी पट्टी बँधी थी। छुपातीं तो कैसे? डाक्टर का चेहरा और भी गम्भीर हुआ तब तो हफ्ताभर इसे देखना पड़ेगा। कहीं 'रेबीज' न हो, वर्ना आपको चौदह सुइयाँ लेनी होंगी। हफ्ते-भर बाद आप फोन करके पूछ लें, अगर रेबीज हुआ तो शर्तिया खुद-ब-खुद

मर चुका होगा, अगर नही हुआ तो फिर आपकी मर्जी, वैस पन्द्रह रुपये मे इजेक्शन आता है—एकदम बिना तकलीफ के जानवर को मारता है—आप फोन पर बता दें तो बस।' उन्होने हाथ से खलास का इशारा किया, 'बीस रुपय इन आठ दिना उसके अस्पताल मे रहने-खाने के हाग। आपका फान नही आया तो हफ्ते भर बाद हम खुद इम काम करा देंगे। ठीक ?"

पतीस रुपये भरकर वे जब घर लौटे तो एक दूसरे से आँखें चुरा रह थे। हफ्ते भर के बाद माँ न पिता से पूछा, 'क्या फोन किया था उन्ह ?" 'हा, किया था", पिना ने कहा, "वह जिन्दा है, जाहिर है कि उस 'रबीज' नही है।'

"तब ?"

"तब ? तब ? तब क्या," पिता ने झल्लाकर कहा। माँ न सोलह साल की गाहस्थिक समझदारी स मुह सी लिया और नल के नीचे साग धोन लगी, चुपचाप। उसने अपनी पराजय स्वीकार कर यू मूक सहमति दे दी तो पिता अपनी इच्छा से माँ की सहमति आ जुडने की शम से बौखला गया था। अब वे मुहलत भी नही माग सकते थे।

मरना तो उसे था ही मरवा दिया, सो ठीक किया। बालकनी की औरता म से किसी एक ने कहा, "अरे कुत्ता हो तो कुत्ते की औकात मे रहे। कुत्ता भी आदमी जैसा तुनकमिजाज हो जाये तो हम लोग पालतू बनाकर किस रखेंगे है कि नही ?"

प्रतिशोध

मधुसूदन बाबू ने उस्तरा मेज पर रखा और ठोडी पर फिटकरी मलने लगे। उस्तरे की धार तेज थी और जरा सा हाथ चूकते ही खून उतर आता। उस जमाने की चीजों की बात ही और थी, उन्होंने उस्तरे को सभालकर धोते हुए सोचा। उस्तरे की तडकी हुई बेंट पर लिखा था, 'मेड इन जर्मनी'। पीढ़ियों तक इस्तेमाल हो सकनेवाली चीजें तो बस वही बनती थी। उन्होंने गमछे पर हौले हौले थपकाकर उस्तरा सुखाया और बडे एहतियात से उसे बन्द करके पुराने डिब्बे में रख दिया। अब हारमोनियम की ही बात लो—पहले कैसी बढिया तावे की रीडस और क्या पर्दे होते थे और क्या लाजवाब ट्यूनिंग। पर्दे पर उँगली छुई नहीं कि सुर गा उठता था—ताउम्र बाल बरोबर भी श्रुतियाँ म घट बढ नही। अब तो जो बनाते हैं, सो सतरंग पिलास्टिक के चमकीले पर्दे, ज्यों वह साज नहीं, पतुरिया की घघरिया हो। भीतर से रीडगोद स चिपका भर देंगे एक बरसात हुई नहीं कि साज खलास। वही हाल तानपूरों का है। पहले असल हाथीदाँत की नक्काशी होती थी, और जवारी ऐसी कि तार छिडते ही गूंज से पता चल कि जैसे लगातार मेघ गरज रहे हैं—अब उस पर भी गोंद से वही सस्ती पिलास्टिक की पट्टी चिपका देंगे। बेडौल तूंबे अनघड खूटियाँ। साज को हाथ लगाने को मन नहीं करता। उन्होंने फिटकरी की डली उस नन्हीं बटुवी म रखी, जिसमें पिछले पच्चीस सालों से फिटकरी रखी जा रही थी।

और हजामत का सामान सँभालने उठ गये।

दलिद्दर छा गया है, दलिद्दर जमाने मे। चीजो पर ही नही, बल्कि आदमी की आत्मा पर भी। कहाँ वह हाड तोडकर रियाज करना, सूरज उगने से पहले उठकर ढाई-ढाई घण्टे एक एक सुर को पकडकर चिपके रहना। मेरुखण्ड के वे हजारो पलटे कण्ठस्थ करना। कौन करना चाहता है अब? अब तो चारेक अलकार रट लिये, दसेक अप्रचलित रागो के नाम सीख लिये—कुछेक लोगो की मनचीती रगमच की अदाएँ सीख ली और साल भर की तालीम के बूते पर बन बैठे घरानेदार गुणी सगीतज्ञ। साले दरबारी कान्हडा के सुर लगायँगे एस कि लगे जौनपुरी गा रहे हैं। और सुननेवाले लोग हैं कि मारे उत्साह के तालियो का दौर नही खतम हो रहा है। सच पूछो तो ये ही मूरख श्रोता इनका दिमाग चढा देते हैं। कोई समारोह हुआ नही कि ठट्ठ के ठट्ठ सुनने को चल आते है, ज्यो लगर खुला हो। अर, कोई पूछे तुम जानते क्या हो? 'अल्प विद्या प्रलयकरी', उनके उस्ताद कहते थे। उन्होने कान की लवें छूकर उस्ताद को याद किया। अहा हा, क्या नूर था चेहरे पे, क्या रुआब था अपने फन का, सिद्धि कहो जी सिद्धि! श्री का रिषभ लगाते थे, तो सुर छाती मे ऐन बीचोबीच खुभ जाता था। खटाक! ज्यो शब्दवेधी बाण हो। सात साल एक कनफडिया बाबा से गुफा मे बैठकर प्राणायाम सीखे थे उस्तादजी, श्वास प्रक्रिया नियमन। तीन-तीन सप्तको की रफत मे गला यों फिरता, ज्यो मछली पानी मे तर रही हो। तोडी गाते सुनो तो दिल मक्खन की माफिक पिघल जाता था। अजी, हिचकियाँ बँध जाती थी हिचकियाँ। सामने श्री सारस्वत सगीत महा विद्यालय से महा कर्कश नक्की सुर उभरा— पीया की नज्जरिया। इमन की टाँग ताड रहे है साले। न शुद्ध सुर, न शुद्ध उच्चारण। कला की हत्या है, हत्या। उन्होने धाड से खिडकी बन्द की और झोला लेकर धीमे धीमे सीढियाँ उतरने लगे।

इधर सन्धिवात जोडो मे धीरे धीरे व्यापने लगा था, और दीवार का सहारा लेकर ही उनसे उतरा जाता था। फर्श पर बैठकर रियाज किये बरसो बीत गये थे। बडी लम्बी दौड है जिन्दगानी भी। बस अकेले दौडते चले जाओ, जब तक ऊपर से पुकार न आ जाये। माँ-बाप तो वे सो बचपन

मे साथ छोड गये, कैसे घोर दारिद्रय मे मामा के घर रहकर जैमे-तसे एण्ट्रेंस करके ट्रासपोट कम्पनी की नौकरी पायी। सामने मुह बाय खडा भविष्य, और सहारा एक नही। पर जब एक रोज उस्तादजी का गाना जो एक महफिल मे सुना तो लगा कि हा, इन्ही सुरो का दास बना जाय। तो दिन-भर नौकरी, शाम को उस्ताद की सेवा। अजी सत्ताईस साल का यही ढग रहा, और आखिरी दम तक उन्ही के चरणो पे डले रहे। उस्ताद क्या, वालिद की ही जगह ता थे। उनकी आत्मा मे जो यह सुरो का रस था मो उन्ही का भरा हुआ था। "अबे मदसूदन, वे कहत थे, 'सीख ले गधे की औलाद! हम गये तो ये फन भी गया। हुआ भी सच म यही! इधर उस्ताद गये, उधर उनकी पत्निया भी अपने अपने बच्चे लेकर इधर उधर चली गयी। रह गये बस व, और पेट काटकर जतन से जोडे ये नायाब साज—जमनी की रीडवाला हारमोनियम, मीरज का बना अफीकी तूब-वाला तम्बूरा, पुणे के तबलो की जोडी। अब तो खोल चढा तानपूरा महीनो कोने मे टिका रहता है। श्रद्धा स वे हर गुरु पूर्णिमा को उसकी पूरी सफाई-भर जरूर करते है। तबल की जोडी भी बन्द पडी है। हारमोनियम अलबत्ता मेज पर रखकर वे कभी कभी बजा लेते हैं पर अब अगुलिया मे वो रफ्त नही रही। वैसे पेटी अभी भी चकाचक है। वो तो उस जमाने की चीज थी जब बाजे की एयरफिटिंग जन्मभर को हो जाती थी। आजकल की तरह थोडे ही कि स्टिकिंग प्लास्टर चिपका चिपकाकर लोहार की भाथी की तरह धौंकते रहो, जस सामने के स्कूल म होता है। एक बार कुछ छोकर सरस्वती पूजा के उत्सव के लिए उनका बाजा माँगने आय थे। उन्होने गुर्राकर भगा दिया। साज कोई शादी की गैसबत्ती है जो मुहल्ले भर मे घूमता फिरे है? फिर अपनी चीज-वस्त बाटना बूटना उन्ह कतई नही सुहाता। न किसी से कभी मागा न ही दिया। अपना हिसाब साफ रखा। उन्होने इतमीनान स खँखारकर थूका। उन्ह अपनी कृपणता पर कोई ग्लानि न थी।

सडक पर पहुँचकर मधुसूदनजी न धोती कुछ ऊपर उकसाई और पटरी-पटरी चलने लगे। सडक पर गन्द पानी का परनाला बह रहा था। नीचे की मजिल मे एक परिवार रहता है। गन्दगी मे जवाब नही। किराये का सवाल न होता तो कब का इस बिल्डिंग को छाड चुके होते। पर अब उनक छाडते

ही किराया छह गुना कर दिया जायेगा, यही खयाल उन्हें छोडने नही देता। बीस साल से यहीं रहते आय है और अब तो आखें बन्द करके भी पूरे घर मे फिर सकते हैं। सो यथासम्भव इन्द्रियो को भीतर मूदे पडे रहत हैं। शुरू-शुरू मे कुछ लोगो ने मुहल्लाना दोस्ती गाठने की चेष्टाएँ की कुछ बच्चे पूजा होली वगैरा का चन्दा मागने झिझकते हुए चढ आये या कि भेजे गये। पर उनकी एक थाड से पतझड के पत्ते जैसे छितरा भी गये। अब वे एक बेहद भुनास और नकचढे बूढे के रूप मे मशहूर है। न कोई उनसे मतलब रखता है न व किसी स। नही व खुश हैं कोई तकलीफ नही उन्हें।

अपनी पतली सतर देह को सँभाले मधुसूदन बाबू दाहिनी तरफ मुडे। सामने बाजार था। दुकानदार स फोकट मे जगत-व्यापार के चर्चे करना, लौकिया मे नाखून खोवना या बेवजह मटर छीलकर खाना और बाजार भावो को लेकर दूसरे ग्राहको स बतकही करना उनका स्वभाव नही। न ही कभी जो सामान न खरीदना हो, उसे देखने दाखने मे वे व्यथ समय गँवाते हैं। अपना सीधे आय, सामान मोलाया और वापस। एक गड्डी मूली, पाव भर लौकी। एक बट्टी चाँदी साबुन और एक पाकिट ईसबगोल की भूसी। इतना कुछ मालाकर उन्होन बटुवा पाकेट मे डाला और भारी झोले को दूसरे हाथ म अदल-बदलकर व वापस लौट चले। बच्चो का एक गोल मोटरो, साइकिलो और ट्रको की परवाह न करता, लग्गी लिय किसी पतग की टाह मे डोल रहा था। मधुसूदन बाबू ने आजिजी स पटरी बदली। औरतें और बच्चे न हो तो ससार स्वग बन जाये बस! दुनिया के खटराग इस स्त्री जाति को लेकर होत हैं। उन्ह अपने उस्तादजी की तीन पत्नियाँ याद आयी—दिन रात की चख चख दजनो बच्चे, चौका चाकी, मारामारी और इस सारे नक के बीच बेखबर परितप्त बठे सुर की साधना करते हुए उनके उस्ताद। ज्यो कीचड के बीच सुशोभित कोमल कमल का एक पत्ता हो। पर अभावो स व भी कब तक जूझते। अन्तिम समय घुल घुलकर टी बी हो गयी थी। न ठीक दवा दारू, न फल-दूध। उनस जितना हो सका, किया। पर एक अनार सौ बीमार। अकेले वे गाडी कहाँ तक खेंचत ?

खून की उल्टियाँ करते, एक श्वास मे चार चार आवतन की तानें लेनेवाले उस्ताद के फेफड़े अन्त समय एक एक साँस को तरसकर रह गये। उन्होंने तभी से तय कर लिया था कि वे परिवार वगरा नहीं बसायेंगे। सरकारी ट्रासपोट कम्पनी की गुमास्तागिरी अपने गुजारे लायक द ही देती थी। कुछ जोड़ा जमाया, कुछ पेंशन। कण्ट्रोल किराये का मकान था। बस आनन्द स है क। न लडकी की शादी की चिन्ता, न लड़के की नौकरी की हाय हाय।

झोला रखकर मधुसूदन बाबू ने धीमे धीमे कपडे बदले, स्टोव सुलगा कर केतली चढायी और सब्जी काटन लग। शाम को एक टाइम खिचड़ी सब्जी। सुबह रोटी दाल। बस इतन ही मे वे तप्त रहते हैं। न अचार, न चटनी। अलबत्ता च्यवनप्राश और दूध व जरूर लेत हैं। रसोई मे रसद के सब डिब्बे भी करीने स लगे थे, लेबल समेत। अव्यवस्था से उन्ह सख्त नफरत है। उन्होंने चाय बनायी, और सब्जी का पतीला चढाकर खिड़की पर आ बैठे। संगीत महाविद्यालय की क्लासें खत्म हो गयी थी और ठी ठी करती लडकियों का एक हुजूम सडक पर उतर आया था। मधुसूदन बाबू ने नाक सिकोड़ी, औरतो की बिलावजह ठिलठिलान की आदत, वे सह नही सकते। उनकी राय मे स्त्री को गम्भीर और मितभाषी होना चाहिए। जो पूछा जाये बस, सो ही बतलाय और अपन काम-स काम। य तो आजकल क चोचले हैं कि लडकियो को सिर पर चढ़ाकर रखो। और तो और, अब तो ये लोग पतलून भी पहन लें तो माँ बाप राजी। शिव ! शिव !! शिव !!! तुलसीदास ने कलिकाल की जो भविष्यवाणी की थी, गलत नहीं था कतई।

लडकियाँ अब एक चाट के ठेले के पास खडी चहक रही थीं। मधुसूदन बाबू उठकर सब्जी म कलछी चलाने लगे। अब पैसे उडायेंगी, इसी सब वाहियात खाने पर। अरे, दाल रोटी का सात्विक खाना खाओ और उनकी तरह सत्तावन साल की उमर मे भी टिच रहो। पर नहीं। अभी ये सब अण्ट-सण्ट खा खाकर जब तक तीस की होयेंगी तो मेदा ऐसा हो चुकेगा कि चालीस की लगेंगी। और खाओ तामसिक भोजन, और लगाओ किरीम-पौडर ! एक हिंस टनटनाहट से उन्होंने सब्जी का पतीला उतारा और

खिचडी चढाकर आच धिमा दी। ये हिन हिन घोडिया सगीत सीखेंगी!
हुँह! 'नारी की झाँई परे अघा होत भुजग।' ठीक कह गय कबीरदास।
बलिहारी उनके उस्तादजी की, जो इस माया से उन्ह उबार गय।

साँझ उतरा रही थी। मधुसूदन बाबू ने वत्ती जलाकर दवस्थान मे पहले दीया जलाया, फिर एक अगरबत्ती, और श्रद्धाभाव स भगवान को प्रणाम किया, 'ओ भूर्भुव स्व '

तभी दरवाजा खडका। उन्ह अचरज हुआ। कौन? उनके यहा तो कोई आता जाता नही। शायद कोई गुजरता बच्चा भडभडा गया हो लिहाज तो—पर कोई था। दरवाजा फिर खडका। आजिजी से उन्होन चटक्नी खोली। उनका पतला मुनहना जिस्म कोडे की-सी तीखी क्रुद्ध जिज्ञासा से भरा सतर हुआ और छोटी छोटी आँखें शका से शरीफे के बीजा-सी चमकने लगीं। दरवाजे पर एक अधेड आदमी खडा था, ' माफ करगे, श्री मधुसूदन शर्मा?"

"मैं ही हूँ, कहिए?' उन्हान अपनी नैसर्गिक रुखाई मे पूछा।

"जी आपसे एक काम था—दरअसल मेरे पास मेरे पिताजी का एक हारमोनियम है—यानी काफी पुराना!"

"तो?" वे अभद्रता से दात कुरेदने लगे।

व्यक्ति कुछ सकपका गया, "जी उसके कुछ पर्दे जरा फँस रह थे। मैं इस शहर म नया हूँ। सामने कॉलिज मे पूछने गया था, पर वह बन्द हो गया है। सुना आप सगीत के जानकार हैं। किसी साज सुधारनेवाले का पता शायद आप बता सकें, ऐसा "

"किसने कहा था?" उन्होंने तकरीबन गुर्राते हुए अपनी घनी भवें सिकोडीं।

"जी, वही कुछ लोगो ने। दरअसल पुराना जमनी का बना हुआ बाजा है जिस तिस के हाथ देना नही चाहता। अच्छे साज कितने नाजुक होते हैं, आपको तो मालूम होगा।"

'हूँ।" वे कुछ क्षण घूरते रहे। 'अच्छा चलिए, बाजा देख लेता हूँ।

कहाँ पास म रहत हैं ? '

जी आपको तकलीफ तो "

पाँच मिनट रुकना होगा।" कसाई न उस बैठन का इशारा कर, व खूँटी म कुरता उतारन लग, ' आपको संगीत का शौक है ?"

'जी, थोड़ा बहुत। मर पिताजी अच्छे जानकार थ। उन्हीं स थाडा कुछ "

किसम तालीम पायी थी ?" उन्होन खिचड़ा म कलछी चलायी। व्यक्ति ने नाम बताया। उन्हें अचरज हुआ। इस साले शहर म एस फनकार न तालीम पायी शाम ? खिचड़ी फिर बन जायगी। उन्होंने पतीली नीचे रखकर चप्पलो म पर डाले, "चलिए।'

घर सचमुच पास म ही था। रास्ते म ही व्यक्ति न बताया, उसका नाम दामोदर है। दामोदर पाण्डेय। पिता गय साल नहीं रहे। बस, घर पर एक बूढ़ी अपंग माँ थी, और इधर उनकी दस रस की विधवा बहन आ गयी थी जो पहले पास के शहर म पढाती थी। वह स्वयं बैंक म मुलाजिम था।

घर छोटा, पर चकाचक साफ था। पर्दों से लेकर गाव-तकिये के लिहाफ तक हर चीज जीण पर धुली हुई और करीने स लगी थी। उन्होने चप्पलें दहलीज पर उतार दी और चाँदनी पर बैठ गय। दामोदर भीतर चला गया। भीतर से कुछ दब स्वर उभरे, फिर वह एक पेटी उठाये वापस आया। कुछ कुछ हाँफते हुए उसन पेटी उनके आगे भक्तिभाव स ऐसे रखी जैसे देवप्रतिमा हो। उन्होंने देखा, पेटी पर शकरपारेदार सिलाई का नरम खोल था। वे प्रसन्न हुए। साज का सही रख रखाव, सुर की तमीज से हमेशा जुड़ा रहता है ऐसा उनके उस्ताद कहत थे। दामोदर ने कवर हटाया। अहाहा, आखें जुड़ा गयी ! लाजवाब कारीगरी। रोजवुड का ढाँचा, चमकते आबनूस व हाथीदात के पर्दे उन्होन भाथी खोलकर उँगली रखी, करुण, मीठा सच्चा सुर। वाह ! " उन्होन प्रशसा से उँगलियाँ फिरायी ' बेहतरीन बाजा है।

दामोदर के पीले चेहरे पर मन्द स्मित उभर आयी। आज तक एयर-फिटिंग नहीं बदली, न ही पर्दे घिसे हैं उन्होने सिर हिला हिलाकर दाद

दी, फिर खराबी टटोलने लगे "रेती या रेगमाल होगा आप पे ? और थोडा मशीन का तेल भी ?" उन्होंने मुलायम सुर मे पूछा। उनकी आशा के अनुकूल घर मे सब था। निरन्तर इस्तेमाल से क्षीण, पर कायदे से महफूज रखा हुआ। वे हारमोनियम जाँच रहे थे, तभी दरवाजे से एक साफ फूल की थाली में दो गिलास चाय के लिए एक युवती नमूदार हुई। यह दामोदर की बहन दमयन्ती थी। दामोदर ने परिचय कराया। एक सात्विक प्रौढता से भरा व्यक्तित्व। गेहुँआँ लम्बूतरा चेहरा। पुराने ढग के साफ-सुथरे, सलीके से पहने गये कपडे। परिचय मे स्मित न कम, न अधिक। मधुसूदन बाबू बहुत सन्तुष्ट हुए। "खुश रहो!" उन्होंने कई सालो बाद कहा। साज मे खास गडबडी न थी। कम इस्तेमाल होने से पर्दे कुछ जकड गये थे, उन्होने मिनटो मे सुधार दिया। उनकी अभ्यस्त उँगलियाँ पर्दे पर दौडी, "वाह!" दोनो के मुह से निकला। उसके बाद न जाने कब रात के दस भी बज गये, पता ही न चला। दामोदर के पास उन्ही की तरह घराना की पुरानी यादो, बन्दिशो और नामो का अदभुत सिलसिला था। खुद उसका गला मीठा न था, इससे पिता ने गाना नही सिखाया, पर सुना उसने बहुत था। देर तक मधुसूदन बाबू वह और दमयन्ती सगीत चर्चा करते रहे। मधुसूदन बाबू ने कुछ पुरानी चीजें उन्हे सुनायीं। गला उम्र के भार से थका हुआ था दम भी उखड उखड जाता, पर अभी भी उनकी बाबत ऐसी कटती थी कि चतुर पारखी भाप सकते थे कि उन्होने एम वैस से तालीम नही पायी। दामोदर ने वाहवाही की झडी लगा दी। दमयन्ती ने भी ससकोच एक दो बार सिर हिलाया। मधुसूदन बाबू के भीतर सगीत का जमा हुआ अथाह वारिधि एकाएक पिघलकर मौजें लेने लगा था। वो वो बन्दिशें याद आ रही थी, जो उन्हें खुद भी याद नही था कि उन्हे याद थी। फन की अद्भुत गहरी समझ दोनो भाई-बहिनो में थी मानना होगा। दमयन्ती स्वल्पभाषी थी और बीच बीच मे उठकर भीतर जाती रहती। शायद माँ की देखभाल को, पर उसके उठने बैठने और आनेजाने मे भी एक सहज सलीका था। लगता नही था कि उकताकर उठी हो। चुपचाप उठती, फिर वैसी ही आकर तमीज से बैठ जाती।

दस बजे मधुसूदन बाबू जाने को उठे, तो दमयन्ती ने ससकोच कहा

कि उनकी माँ का आग्रह है, वे खाकर ही जायें। मधुसूदन बाबू जा न सके। खाते-खाते भी चर्चा होती रही। खाना सात्त्विक और सुघराई से परसा गया था। बगल के कमरे में ही माँ का बिछौना लगा था, वे वहीं से आग्रह करती रहीं, "अचार देना इन्हें बेटी, बेरवाला! बेल का मुरब्बा भी देना। जरा पुराना बेल है भाई जी, मगज को तर करेगा। आप तो फनकार ठहरे!"

बातों, जज्बातों का बर्फ जो पिघला तो मधुसूदन बाबू का उस घर में आना-जाना प्रायः रोज ही होने लगा। घर ने भी बड़े तपाक से उन्हें एमे ग्रहण कर लिया जैसे पुराने बिछुड़े हुए सदस्य हों।

मधुसूदन बाबू के रूखे उजाड़ अंतर्मन के भीतर धीरे धीरे कोमल अँखुए पनपने लगे थे। रात वे लेटते तो देर तक कानों में विस्मृत बंदिशें धुनें गूँजती रहतीं। बीच बीच में दमयन्ती की मृदुमन्द आवाज आती, 'एक फुलका और दूँ? दही खट्टा तो नहीं? शक्कर दूँ? शिव! शिव!! शिव!!! पर वे जितना ही ध्यान संगीत और शिव की तरफ मोड़ना चाहते, मन सालों बाद खूँटे से छूटे जानवर की तरह बगटुट उतनी ही तेजी से उसी घर की तरफ भाग भाग निकलता। दमयन्ती दमयन्ती! नाम ही जैसे दमकता हुआ हीरा हो। अदभुत गरिमा से मण्डित, स्वर्गीय द्युति से भरपूर। उसके चिबुक का कुछ कुछ हठीला मोड़ उसकी रोटी बेलती पुष्ट बाँहों के नम कोण, चूल्हे के नम उजास में दमकते उसके कपोल। मधुसूदन बाबू अपने कमरे में अक्सर हारमोनियम पर रात गये ठुमरियाँ गाते रहते—'पिया मत जइयो रे अकेली डर लागे।' उनका हृदय जो एक बिचक्कर बन्द की गयी कुठरिया सा सकुचित और अँधेरे की सूनी बामदार पर्तों से भरा हुआ था, अचानक खुला-खुला सुहावना और उजेला हो आया था। उन्होंने सालों के बाद दो नयी कमीजें सिलवायीं, एक जोड़ी नयी चप्पलें भी मोल ली। नाई से जब उन्होंने कलमें ठीक से कतरने को कहा तो वह कुछ हक्का बक्का-सा देखने लगा। एक बार उन्होंने उसे चवन्नी ज्यादा देने की सोची भी फिर सोचा, बेकार क्यों रेट बिगाड़ना?

दमयन्ती की माँ को भी उनका आना खूब अच्छा लगता। पड़ी पड़ी वे

उनसे अपने पति के सगीत प्रेम और गुजरे जमाने के चर्चे करती रहती। दामोदर भी तो उन्ही की तरह अधपगला है सगीत के पीछे वे लाड से कहती। पिछले साल ऑफिस मे कुछ दोस्तो से सगीत पर चर्चा करते-करते मारने पीटने पर आमादा हो आया था। "क्या करता ?" दामोदर खिसियाकर प्रतिवाद करता, "जिद बाँधे चले जा रह हैं कि सूहा और सुघराई अलग-अलग चीजें हैं। अब आप ही कहिए, सूहा-सुघराई यानी कमज-कम सुघराई आपने अकेली गायी जाती सुनी है महफिलो मे ? यानी सचमुच की पुरानी महफिलो मे ?"

मधुसूदन बाबू ने मुदित हो समथन किया। लोण्डा जहीन दिमाग रखता है, शक नही। "अब मधुसूदनजी चार सगीत सभाएँ सुन ली, जरा सुबह-शाम आधा घण्टा रेडियो सुन लिया, तो आजकल सभी शास्त्रज्ञ बन बैठते हैं। न कान मे सुर, न गले मे रफ्त, न तबले पर ठीक बाबत कटती है। बस घोर शराबा किया, चन्द अखबारों मे नाम छपवा लिया और नामी घरानेदार सगीतज्ञ बन गये। लगे अलाँ की फलाँ की शागिर्दी का झूठा प्रचार करने।" मधुसूदन बाबू का मन किया कि उसे गले लगा लें। हू-ब-हू उन्ही के मन की बातें।

दमयन्ती का प्रसग उठने पर वृद्धा माँ की रुलाई छूट जाती। "अभागी है, और क्या ? ऐसा देख-सुनकर इसके पिताजी ने ब्याह किया। घर, खानदान, लडका सब ठीक ठाक था। पर भाग्य का लेख कौन जाने ! ठीक छह महीने बाद एक्सीडेण्ट मे जाता रहा। इकलौता था। साल भर मे सदमे से सास-ससुर भी चल बसे। और बस इसने सन्यास जैसा ले लिया। पहले ही कम बोलती थी, जब से नौकरी शुरू की, बस हाँ हूँ से आगे नही। गाय है भाई साहब, मेरी गरीब लडकी, गाय !" वे कहती और फिर रो रोकर अपनी जीर्ण देह को कोसने लगती जिसके बन्धन से बेटा बेटी दोनों पराधीन हो गये हैं। अच्छी-खासी नौकरी उनके खातिर छोड आयी पगली। और उन्हें भगवान माँगे से मौत भी नही देता, कैसी विडम्बना है ? वो तो मधुसूदन बाबू आ जाते हैं, तो कुछ देर को जरा रौनक हो जाती है। दोनो बच्चे भी जरा बोल-बतिया लेते हैं, वरना वे तीनो हैं और ये घर की दीवारें। न बोलना, न चालना, जैसे मकबरा हो। क्याऽ, परिवार का सुख ही नही

था नसीब मे, वरना इस घर मे कितने प्राणी डोलते। एक उसास लेकर वे तकिये से उठ जाती। तभी दमयन्ती चुपचाप दलिया या खिचडी लाकर उन्ह खिलाने लगती। छोटे बच्चे की तरह बहुत अहतियात से खिलाकर वह उनका मुह धुलाकर कुल्ला कराती, फिर आंचल की खूट से निकालकर इलायची के दाने उनके पोपले मुह मे भर देती, "अब सो जाओ, बहुत हुआ, फिर बुखार बढ जायेगा।'

मधुसूदन बाबू को नही लगता था कि वृद्धा ज्यादा चल पायेंगी। इधर दामोदर ने भी चिन्तातुर स्वर मे उन्ह बताया था कि मा की हालत गिरती जा रही है। डाक्टर का कहना है कि बमुश्किल चन्द महीने और। मैं तो दमयन्ती से कह रहा हूँ कि वह अपने पुराने कॉलेज मे नौकरी के लिए फिर एप्लाई कर दे। सोलह साल वहाँ पढाया है, जरूर फिर वे ले लेंगे। यहाँ रहकर क्या करेगी। मैं भी सोचता हूँ, माँ के बाद मैं हरद्वार चला जाऊँ। मेरे एक गुरु वहाँ हैं। आश्रम मे रहन की पूरी व्यवस्था है।

मधुसूदन बाबू के गले म जैसे सीस का गोला अटक गया हो। छाती में हवा घुटने लगी, बमुश्किल बोल पाये—

"तो?'

"वह कहती है, एक तो स्कूल की कमेटी मे बेहद सकीर्ण विचारावाले दकियानूसी लोग हैं। खासकर महिला लेक्चरारो को लेकर। इससे उसे वहा बडी घुटन होती है।'

'फिर?"

"फिर पता नही तीन चार साल से छूटा सब फिर से शुरू हो पाय या नही?'

'यह तो है।'

"क्या है? पागल है यह तो।" दामोदर झुझलाया। 'इस शहर मे तो कोई स्कोप है नही। वहाँ ज़रा पहचान के लोग हैं। पुराने सम्बन्ध हैं, और अब मुझे भी इस पारिवारिक दाय से मुक्ति चाहिए। माँ नही होती तो मैं तो कब का चला गया होता। स्वामीजी कब स बुला रहे हैं।

'उसे अकेला नही लगगा?"

"अकेलेपन का क्या है?" दामोदर तल्खी से हँसता है, तो उसके चेहरे

से हू ब-हू दमयन्ती का चेहरा झाँकता है, "यहाँ कोई कम अकेली है वह ?"

'और मैं ?' मधुसूदन बाबू पूछना चाहते थे, पर फिर जाने को उठ खड़े हुए। उनके भीतर मानो एक प्रचण्ड वात्याचक्र घूम रहा था। 'ता दमयन्ती चली जायगी ?' तकिये पर सिर टिकाकर उन्होंने सोचा। सुबह की रागिनी सा वरुण कोमल दमयन्ती का लम्बूतरा चेहरा उनके आगे तैर आया। इतने बड़े शहर मे उसके लिए कही साथ नही, कि इच्छा के विरुद्ध वह इतनी दूर फिर से क्या वे जुबान खोलकर कभी कह पायेंगे कि वह चाहे तो

शिव ! शिव ! उन्होने बेहद क्रोध स करवट बदल ली। दिमाग तो सही है उनका ? उम्र म कम से-कम बीस साल का अन्तर होगा। अगर उसके पिता हात पर दमयन्ती थी कि उनके ख्याला से चुपचाप टिककर खडी थी जैसे अक्सर दीवानखाने के दरवाजे से वह टिककर खडी रहती है उनके उठकर चौके म आने के इन्तजार मे। निर्निमेष उन दोनो को ताकती हुई। कमकर बाँधी गयी वेणी, उनके आगे चलती उसके व पुष्ट नितम्ब, सुडौल जघाएँ शिव ! शिव ! मधुसूदन बाबू उठकर देर तक ठण्डे पानी से मुह धोते रहे फिर देर तक तानपूरे पर रगडकर पालिश किया किये।

और फिर महीने भर बाद दामोदर की माँ भी चल ही बसी। वे भी घाट गये थ। रोज ही जाते थे वैसे भी। दोना भाई बहनो न अपना दुख भीतर ही घिरा लिया था। हाहाकार करने को था भी क्या ! वे तीनो देर तक चुपचाप बैठे रहते। फिर एकाध हफ्ते बाद दामोदर ने उन्हें बताया कि बडी अच्छी खबर है। दमयन्ती का आज उसकी एक पुरानी सहकर्मी सहेली ने लिखा है कि उसके पुराने डिपार्टमैण्ट मे एक जगह खाली है, यदि वह आना चाहे तो

मधुसूदन बाबू घर को लौट रहे थ तो पैर जमे मन मन भर के हो गये थे। रात देर गये तक वे सोचते रहे फिर एक निष्कर्ष पर पहुँच ही गये। अगले रोज सुबह बैक जाकर पहले उन्होंने कुछ रुपया निकाला, फिर पचासेक रुपया किराया भरकर हफ्ते भर का चौक की एक दुकान से, जहा उन्हें कोई न जानता था, हिन्दी का एक टाइपराइटर किराये पर ले आये। डेढ सौ रुपये उसने सिक्योरिटी के रख लिये थे, बाद को लौटा देगा। चलो ठीक है। रास्ते से उन्होने कागज और कार्बन मोलाया और एक

लिफाफा भी। 'टप-टप टप' अनभ्यस्त जकड़ी उँगलियों को टाइप करने मे समय लग रहा था, पर वाक्य उनके भीतर अपने आप बने जा रहे थे। मधुसूदन बाबू दमयन्ती के कॉलिज के चेयरमैन को टाइपराइटर पर गुमनाम खत लिख रहे थे। एक निहायत कड़वा, अश्लील खत, जिसमें दमयन्ती के साथ उनका अपना नाम जोड़कर हर सम्भव तरीके की भद्दी परिकल्पनाएँ गूँथी गयी थी और अन्त मे यह सविनय निवेदन किया गया था कि ऐसी पतिता, कुलटा, दुश्चरित्रा स्त्री को, जो अपने बाप की उम्र के बुजुर्ग के साथ छिनाली करती है, कतई उनके जैसे सम्भ्रान्त कॉलेज मे पुन स्थान न दिया जाये। आगे आप स्वय समझदार हैं—आपका एक हितचिन्तक।

पत्र पूरा कर मधुसूदन बाबू ने लिफाफे मे डाला, और पता टाइप किया, फिर मनोयोग से अपने घर की सफाई की, और रिक्शा लेकर सालो बाद रेलवे स्टेशन को चल दिये। वहाँ जाकर उन्होंने पहले इधर-उधर देखा। नही, कोई परिचित चेहरा न था। चेहरा परे किये उन्होने अगले स्टेशन का टिकट कटाया और एक अखबार की ओट किये तब तक बैठे रहे जब तक वह स्टेशन आ न गया। स्टेशन पर पहुँचकर उन्होंने खत स्टेशन के बाहर ही पोस्ट किया और वापसी का टिकट कटाकर तुरन्त लौट आये। इसके बाद वे महीनो बाद मन्दिर गये और देर तक भक्ति भाव से वहाँ बैठा किये।

एक नीच ट्रैजेडी

दरवाजा खोला। भीतर एक चिट्ठी पड़ी हुई थी। अन्तर्देशीय। बाहर तक महीन मकड़िया इबारतो से भरा हुआ। लिखाई माँ की ही हो सकती थी! माँ के पत्र का आखिरी हिस्सा हमेशा चिट्ठी से उमगकर बाहर उस जगह तक उफना आता है जहाँ लिखा होता है—कृपया पत्र के भीतर कुछ न डालें।

मैंने एक विराट झटके से किताबें मेज पर फेंकी और लट्-से कटे पेड की तरह तखत पर गिर पड़ी। नाटकीयता मे कोई तत्त्व जरूर है जो तकलीफो को काटता है। चाहे कुछ देर को ही हो। एक तो यह वकीलो और प्रोफेसरो का थका बुसा शहर, तिस पर धूल भरे फरवरी मार्च के महीने, जब युनिवर्सिटी मे चिन्ता और डर सूखी पत्तियो से मँडराते फिरते हैं। हाये इम्तहान! इम्तहाऽऽन! मैंने कवायदी सुरो मे गाया। खिड़की के बाहर गुलमोहर और सेमल सारी धूल और खुश्की के बावजूद रगो से ऐसे फटे पड रहे थे कि सारे डर के बावजूद एक नजर भी उधर बहक जाये तो पैर कहीं जाते हैं, मन कहीं। मैंने तुक मिलाया, हाये नौजवान! नौजवान! नौजवाऽऽन! मेरा मूड कुछ अच्छा हो गया। मैंने टाँगें ऊपर दीवार पर टिका दी और अपने सुन्दर खुरदुरे टखने हिलाते हुए अपनी तुकबन्दी का मन्त्रपाठ करते-करते चिट्ठी खोल ली। माँ की चिरपरिचित हाँफती भटकती शैली मे खबरें थी। इधर की, उधर की, और फिर घूम-फिरकर बात वही आ टिकी थी—आशा है

छुट्टियो मे घर आने के लिए रिजर्वेशन करा लिया होगा। आशा है खाना वगैरह ठीक से खा रही होगी। आशा है पढाई का ध्यान इस बार तो—आशा है! आशा है! आशा है! चिटठी का गोला बनाकर मैंने उछाल दिया और पास पडा शीशा उठा लिया। आऽशा है! जब मूड खराब हो तो अपना चेहरा आईने मे सहृदयता से देखने मे बडा सकून मिलता है। सच मे। तुम्हारे अपने चेहरे मे कुछ जरूर होता है जो दुनिया की हिकारत के बावजूद तुम्ह हमेशा अपने प्रति बेतरह प्रेम और क्षमाशीलता स भरा दीखता है और वही तुम्ह अपने प्रति हर बार नये सिरे से आश्वस्त करता है—बावजूद इसके कि—बावजूद इसके कि—

टग टग टग! खाने की घण्टी बज रही है। हरी कासई आवाज। जहाँ घन घण्टे को निरतर पीटता है वहाँ कई छोटे-छोटे काले गढे पड गय हैं, मुहासो की तरह। आओ! आओ! आओ! युनिवर्सिटी की इमारत के ऐन तले बैठे हुए भी जो घबराहट इस दम महसूस नही हो रही है वह घर जाते ही आ चिपटेगी। बावजूद इसके कि वहाँ सब कुछ इतना परिचित, फुसती और आराम करने के आग्रहो से भरा हुआ होगा। कुछ जरूर होता है घर मे जिसके कारण हर बात जो यहाँ कतई निजी और सीमित लगती है, वहा जाते ही सावजनिक बनकर धुएँ सी पसरने लग जाती है, चारा ओर से घेरते हुए। क्या है? क्या है? कसे है? अपनी शानदार कुर्बानियो के नश्तर से निरन्तर तुम्हारी चमडी छील छीलकर माँ बाप मानो भीतर तक पैठ जाना चाहते हैं, तुम्ह फिर से अपने भीतर समो लेने को आतुर, कि तुम्हारा कुछ भी उनसे छुपा न रह जाये। आशा है! आशा है! आशा है! और तो और, मनश्चिकित्सको की तरह वे तुम्हारे सपनो को भी अपनी मिल्कियत बना लेना चाहते हैं।

मैंने सुराही से एक गिलास पानी भर लिया और उसे हवा मे लहराया। एक जाम ससार के सारे विगत आशावादियो के नाम! मैंने गाने की भी कोशिश की पर मेरी आवाज मुझी तक नही पहुँची। प्यारे भाइयो और बहनो, सारी चेष्टाओ के बावजूद मेरी ताकत एक खतरनाक ढग से छीज रही है। गिलास का पानी खिडकी के बाहर कुछ देर अफ्रीका के नक्शे के आकार मे पडा रहा, फिर धीमे धीम सूख गया। खाने की दूसरी घण्टी बज रही है।

सामने टँगा कैलेण्डर हवा मे धीमे धीमे डोले जा रहा है। जहाँ वह रोज रगड खाता है वहाँ उसके पीछे दीवार पर एक अर्द्धचन्द्राकार निशान सा बन गया है। जैसे छिली हुई कुहनी हो। मुझे अपनी माँ की याद आयी। शुरू-शुरू में जब हमारे टकराव शुरू हुए थे तो सबसे पहले मा ही थी जो कि बेतरह हिल गयी थी। बाबू से भी ज्यादा। जाने कब धीमे धीमे हल्के मजाको की तुर्शी जाती रही और प्रत्यारोपो की गम्भीरता बढने के साथ-साथ प्रतिवादो की कडवाहट भी बढती चली गयी थी। 'खरबूजे को देखकर खरबूजा रग पकडता है,' बाबू कहते थे। छोटा और मैं मुहावरो के वे खरबूजे थे जा खुद छुरी पर गिरें या छुरी उन पर, कटते वे खुद ही हैं।

कालिन्दी मीना-स्वप्ना वासन्ती, एक झुण्ड-का झुण्ड बेवजह ठहाके लगाता डायनिंग हॉल को जा रहा है। ये वे हर्राफा चिकने घडे, वे काली कामलियाँ, वे औघड वीतराग दिव्यात्माएँ हैं जिनकी भूख पर भावनाओ का कभी असर नही होता। कडवी-से कडवी राजनीतिक झडप या इम्तहानों में खराब से-खराब पर्चे के बाद भी वे हँस हँसकर भूख भरे कौर निगल सकती हैं दही पर चीनी डलवाने और दाल को दुबारा गम कराकर उस पर मिर्च की बुकनी डाली जाने की इच्छा व्यक्त कर सकती हैं। गुलदाज, हँसमुख, निर्विकार मैंडे। माँ-बाप की प्यारी, सासो की दुलारी, बच्चा की महतारी।

भडास निकालकर मेरा जी फिर खुश हो गया था। मैंने लेटे-लेटे गुन-गुनाना चालू कर दिया।

"बडी खुश लग रही हो, बात क्या है?" किशवर दरवाजे से टिककर खडी थी। मौत और किशवर हमेशा बिना दरवाजा खटखटाये आते हैं, ऐसा मशहूर था। मुझे आश्चय नही हुआ। फूलदार छापे का हाउसकोट अपने विपुल उरोजा पर लपेटे, सिर पर रगीन तौलिए का स्तूप उठाये प्रश्न-चिह्न-सी वह खडी रही—'कोई खास खबर ?" उसने आँख मारी। किशवर उन बेवजह बदनाम लडकियो मे से है जो बात-बेबात सबको आँख मारकर उनसे भद्दे राज उगलवाने के सकेत देती हैं। वसे दिल की वह साफ है और मुझे उससे कोई गिला नही। सिवा इसके कि वह अपनी निजी आदतो मे बेहद गन्दी है। उसके कमरे की खिडकी पर अचार और जैम की सैकडो बोतलें बगैर ढक्कन के सदा पडी रहती हैं, फफूद से भरी हुईं। उसके

टूथब्रश को देखकर लगता है कि उससे शायद जूते की पालिश की गयी होगी, उसकी ब्रेजियर का फीता कभी ब्लाउज से झाँके तो तुम्हें उबकाई

मैंने अपने खयालों को तमीज से लपेटकर भीतर रख दिया और कुहनी के बल उठँग गयी—"कुछ नही, यूँ ही।" पर वह गयी नही, वही खडी अपनी बिलौटे सी आँखो से कमरे का जायजा लेती रही। मैं अपने-आपसे शत वदन लगी कि अब यह कुछ-न-कुछ माँगेगी जरूर। वह होस्टल मे उधार न लौटानेवाली मँगती के रूप मे मशहूर है।

"यह चप्पल नयी है?" उसने बेमुरौव्वती से मेरी नयी चप्पल मे अपने वे खुर घसा दिये जिन पर कालिन्दी से माँगी नेलपालिश लगी थी।

'हाँ।" मैंने अपना स्वर भरसक सपाट रखा।

'अच्छी है!" उसने अपनी उँगलियाँ कुछ अन्दर-बाहर लपलपायी, फिर चप्पल ठेल दी—"हम पिक्चर जा रहे हैं, चलोगी?' वह कंघे की कोर से दाँत कुरदने लगी—"तुम तो छुट्टियो मे घर जा रही हो ना?"

'हाँ!"

"तो चलो फिर, वहाँ तो यह फिल्म अगले साल आयेगी!"

देखूँगी!' मैंने सुर मे भरपूर उक्ताहट लाने की असफल चेष्टा की, 'कौन-सी है?"

उसने सस्पेंस और मारधाड से भरपूर एक अंग्रेजी पिक्चर का नाम लिया जिसके शहर मे काफी चर्चे थे।

"टिकट?"

'मिल जायेंगे!" उसने कन्धे उचकाये, उसके पिता पुलिस की कोई बडी तोप थे, और कभी ऊँचे ओहदे पर इस शहर म गद्दीनशीन रह चुके थे अत उनकी एक सूक्ष्म सी तूती यहाँ अभी भी बोलती थी—खास नही, पर सिनेमाघरो, परचून की बडी दूकानो वगैरा मे। शहर के सबसे बढिया सिनेमा हाल का बूढा बदमिजाज गेटकीपर उसे बेबी कहता था और देरी से पहुँचने पर भी बगैर झुझलाये टार्च चमकाता हमे सीटो तक पहुँचा जाता था।

'बारह तक बता देना साढे-बारह जायेंगे।" वह मुड गयी। मैं उसे जाते देखती रही। मेरा मन हो रहा था कि उससे पुकारकर कहूँ—प्यारी

विशवर, कुछ देर यही बैठ जाओ, कुछ देर बात करो, कुछ भी, कही की भी, मुझे इस अकेलाहट से, मुझे अपने-आपसे बचा लो मेरी दोस्त ! मुझे लगा कि मेरे मुह से पेपरबैक उपन्यास बोल रहे हैं, और मेरी हँसी छूट गयी ! मैंने उठकर चप्पलें पहनी, फिर उतार दी और लेट गयी। पिक्चर देखने मैं नही जाऊँगी, यह मुझे मालूम था, उन्हे भी। बेकार की तकरार क्यो ?

छत के कोने पर मकडी फुर्ती से जाला बुन रही थी—अपनी असह्य पतली टाँगो से इधर-उधर भागती, कातती, चिपकाती। मैं नाखून चबाने लगी। पिछले साल पर्चे बावजूद मेरे मा-बाप के मुगालते के, कतई सामान्य हुए थे, खासकर वल्ड हिस्ट्री का तो एकदम गोडकर रख आयी थी। दरअसल वल्ड हिस्ट्री का सक्सेना मुझे फूटी आखो नही सुहाता था। अपने जमाने का अच्छा विद्यार्थी रहा होगा पर एक चपरकनाती भावुकता मे वह प्राध्यापकी मे आ घुसा था। उसके साथ के और जहीन विद्यार्थी आज सरकारी प्रशासक के लिबास मे ऊँचे कल पुर्जे बिठा रहे थे, बडी प्राइवेट सेक्टरवाली फर्मों की वातानुकूलित गाडियाँ दौडाते हवाना की सिगारें पी रहे थे, और वह नपोलियन की लडाइया के मुख्तसर लेखे जोखे कांख म चापे गजा और बदमिजाज होता चला जा रहा था। मुझसे वह पहले ही दिन से कुछ उखड गया था। या शायद मैं ही उससे। दरअसल अब आपसे क्या छुपाना, वह मुझे अपने माता पिता के अभिन्न मित्र 'क' चाचा की याद दिलाता था। वही पतली तोते की चोच-सी नाक और चौकोर जबडा, वही नकली अलमस्ती से उचक-कर चलने की आदत और नक्की आवाज़। रेडियो मे जो बच्चो की फुलवाडी-नुमा प्रोग्राम आते हैं ना उनमे एक शख्स जो बडे भैया कहलाता है और हर अहम मौके पर बच्चो को टरकाकर तोतली आवाज मे खुद ही मज़ाक सुनाकर उन्हें सविस्तार समझाने बैठ जाता है, कुछ कुछ वैसे ही 'क' चाचा को समझ लीजिए। 'आखिर हम लोग हैं पुरानी पीढी के,' उन्होने यह वाक्य कहा नही, कि हम लोगो के कांटे खडे हो जाते थे। अम्मा के वे बेहद चहेते थे, क्योकि उनके पारिवारिक नैतिक उपाख्याना की वे बेचूक दाद देते रहते

थे। फिर खाने के मामले। उनकी जुबान मे सुनते थे कि बहुत रस था, यानी जिसे अंग्रेजी मे कहते हैं 'डिसक्रिमिनेशन'। वे तुरत भाँप लेते हैं कि कब चाय नौकरो ने बनायी है और कब अम्मा ने। 'घर का रस तो बस गृहिणी के ही हाथ मे होता है', वे कहते और तुरत प्रस्ताव करते कि अम्मा मुझे भी अपनी यह सिद्ध कलाएँ सिखा दें वर्ना सिफ बर्नार्ड शा और टी यस ईलियट पढकर गहस्थी नही बनती—लडकिया से। समझी ? बाबा के भी ये परम चहते थे क्यांकि राजनीति और समाज के नैतिक अवमूल्यन पर वे बखूबी उनकी बातचीत की गाडी ठेल ले जा सकते थे, बीच-बीच म गाधीवाद की थेपी देते हुए। इस त्रिकोणी नाटकीयता मे हर बार हम भाई-बहना की उपस्थिति सापेक्ष हो जाती है। कतई।

"अब आप लोग मुझे चाहे रूढिवादी कहें"—अम्मा के शुरू होते ही वे लहककर बढावा देते, "भाभी, आप तो शब्दों का गलत इस्तेमाल करती हैं, आप कहती हैं रूढिवादी, पर मैं कहूँगा भद्र, शालीन। अब भद्रता कोई बदलनेवाली चीज तो है नही बेसिक्ली, कि कोई कहे कि हम नयी पीढी के हैं इसलिए आपके अदब-कायदे हमारे लिए बेमानी हैं। क्यो भाई, यग रिबेल्स ?" उनकी मुह खोले एडिनायडल जिज्ञासा जाक की तरह हमारी उपस्थिति से चिपककर फूलने लगती, "साबित कीजिए कि मैंने गलत कहा है।" वे बाबा को आख मारकर हिंस्र हँसी हँसते, "जरा इधर हम लोगा के साथ तो बठो हम लोग भी जरा सुनें कि क्या नाम यगर पीढी आजकल क्या राय रखती है ? सुना है बडी बहसें करने लगे हो बर्खुरदार !' मैं भैया का भिचता जबडा देखती और मेरी नाभि मे कुछ कुलबुलाने लगता। यू हमारी पूरी कोशिश यही रहती थी कि चाचा या मासियो के आते ही हम तीनो घर के गुह्यतम कोना मे कही बिला जायँ, पर हमे पूरी तौर से मालूम था कि तब भी नेपथ्य से घरवालो की ऊँची आवाजें जीवन और त्याग, ससार और समाज जैसे ऊँचे विषयो पर अपने सहज छिछलेपन के साथ बुलकारती रहेंगी। अपने ही माँ-बाप हडकाने को क्या कम थे कि ऊपर से ये रिश्तेदार भी !

ऊँची वाडो ऊब और अकमण्य चाकरो से भरे हमारे शहर के विराट उजडे बगीचो और भूरे फाटकवाले उन पुराने बगलो मे से एक म मालिनी

मौसी रहती थी। उनके घर के भीतर नीम-अँधेरे मे घुसते ही धुँधलाये रोगन, धीमे धीमे घुलती लक्डी और धूल की गन्ध नथुनो मे ऐसी भर जाती थी कि पूरे वक्त लगता रहता जैसे किसी तलघर मे घुसे बैठे हो। स्वय वे तीखा बोलनेवाली और निरन्तर एक कडवा दुख भीतर पोसनेवाली सतत शकालु जीव थी। हमारी सरल, धमभीरु और हँसमुख मा से कतई भिन्न। उनके बोलने, उनके झुँझलाने और उनकी धीमे धीमे रुक रुककर बननेवाली भगिमाओ मे एक पूरी स्त्री जाति के प्रवचित रक्त का इतिहास था, जिसमे दिन ब दिन उनकी पूरी ताक्त निचुडती जाती थी—अपने विगत सुनहले रूप और लकदक डिग्रियो के बावजूद या शायद उन्ही के कारण। हम सबको उनके उस धूमकेतु से उज्ज्वल विगत की घटनाएँ कमजकम सौ बार तो सुनायी ही गयी होगी जो कि एक कृपण कठोर परिवार की चाकरी मे इस छोटे शहर मे घुल घुलकर नष्ट हो गया था। कैसे पन्द्रह मिनट तक कवोकेशन मे उनके नाम पर तालिया बजती रही थी, कैसे उनके परिचित मा कहना था कि उनकी-सी रूपवती पर अब क्याऽ? जबसे हमने होश सँभाला, वे एक कसकर बन्द हुए दरवाजे की तरह थीं जो एक चिड़चिडायी चरमराहट के साथ सिर्फ उन्ही को भीतर आने देता था जो उनका अपना रक्त मास हा। हमारी नेकनीयत और सतत उत्साही माँ उनमे से एक थी, पर उनके घर आकर मनहूसियत और पछतावे की एक परछाइ उन पर भी आ पडती थी। "कैसी थी, और कैसी हो गयी बेचारी!" वे कहती और दुखी हो जाती। एक कडियल सास के तले मालिनी मौसी के जीवन की जो शुरुआत बिगडी तो सास के मरने के बाद भी सँभली नही। या शायद सास तो एक बहाना भर थी। त्रासदी की रानी मालिनी मौसी का रहस्यमय रूप से ट्रैजिक स्त्रीत्व ही एक ऐसी शिला थी, जिसके तले उनका व्यक्तित्व कतई भिचकर रह गया था। उनके घर जाने पर, या जब-जब वे हमारे घर आतीं, हम उन्हें अपनी तीखी आवाज मे शिकायतें ही करते सुनते थे। अपने स्त्रीत्व से उत्कट घृणा और आत्म-दया के बीच उनकी हर बात सदा झूलती रहती। मर्दपने की गन्ध भर, चाहे वह तम्बाकू का धुआँ हो या अश्लील मजाक या ऊँचे ठहाके, उन्हें एक उत्कट उत्तेजना से भर जाते थे और वे घण्टा अपनी घृणा में पुरानी घडी-सी टिकटिकाती रहती। वटो की खर्चीली बहुओं से

लेकर, पति की छोटे शहर की स्थायी नौकरी और पुराने नौकरों की ढीठ चतुराई तक, शिकायतें उनके हर वार्तालाप की टेक होती। हमारी माँ के पुराने अलबमों में वे बेहद पीली, कमनीय और रूपवती दिखायी पड़ती थीं, पर अब तक वह रूप एक विराट मोटापे में धँस चुका था। हाँ हाँ, हमारी सतत प्रफुल्लित माँ भी तो ऐसी धान-पान न थीं, पर उसके फैलाव में एक चैन भरा वात्सल्यमय गदगदपना था जिससे दूधभरी गोदें बनती हैं। मालिनी मौसी का मोटापा एक ऐसा खट्टा खमीरी उफान था जो चीजों के निरंतर ढँककर भीतर बन्द रहने से आ उठता है। तुश, अस्वास्थ्यकर और पोला। अनेकानेक रहस्यमय स्त्री रोग हमेशा उनकी विराट् कमर तोड़ते और सिर को दर्द से फटता हुआ बनाये रखते थे। और उनके आलिंगनों से सदा दवाइयों और अकेलेपन की उत्कट गन्ध आती थी। पर इस सबके बावजूद इस सारी त्रासदी में कुछ था जो बेहद कारुणिक और मानवीय भी था। मौसी का दुख उस जीव का शब्दहीन दुख था जो प्रकृति के अन्याय और स्थितियों के घटियापने के विरुद्ध अकेलेपन और शून्यता के छोरों पर बिना हथियार डाले जूझ रहा है। अपनी तरह से। लगातार। और उनकी हार में कहीं हम सब भी शामिल थे।

छोटी मौसी का वजूद उनकी तुलना में कतई सहज और सरल था। जिस जगह मालिनी मौसी ने स्थितियों से टकराकर जूझने की कड़वी चुनौती कमकर उठा ली थी, उसी बिन्दु पर शालिनी मौसी ने हथियार डालकर आजन्म बालिका-वधू बनी रहने की स्थिति प्रेमपूर्वक ग्रहण कर ली थी। उनका रीझना खीझना, बोलना---सभी बाल्योचित और अस्थायी था। अपने छोटे-से पुत्र से वे हमेशा अंग्रेजी में बहसें करतीं, रोती या रीझती रहती थीं। उनकी भोली आकांक्षाओं की परिधि विदेशी सामान से लकदक गृहस्थी जोड़ पाने से लेकर अपने नन्हे बेटे को आला अफसर बना पाने तक ही फैली हुई थी। इसी से उनके दुख भी छोटे छोटे और अस्थायी थे—महरी का न आना, अचार में फफूँद पड़ना या बच्चे का इम्तहान में कम नम्बर पा जाना। सतत भीरु और सतत शुक्रगुजार, वे हमारी माँ के रूमानी जीवन के उस शून्य को बखूबी भरती थीं जो उनके अपने बच्चों के दूर छिटक जाने से उपजा था। माँ के भग्न हुए जाते स्वप्नों की दीवार को

उनका बचकाना सहारा भी बहुत था। या शायद अपने स्वार्थ से हम ही यह विश्वास करना चाहते थे।

मुह मडवा हो गया था। मैंने उझककर चप्पलो मे पैर घुसेडे और पुसी के कमरे की चल दी। पुसी, मानें पुष्पिन्दर। मस्ती और मसखरी से भरपूर सरदारनी, पुसी ग्रेवाल। वह कुछ-कुछ नाक से बोलती थी और उसकी बचकानी अंग्रेजी मे हिन्दुस्तानी अंग्रेजी स्कूलोवाला एक खास कटाव था। उसकी पेंचहीन दिमागी दुनिया हरी घास का वह अनहद विस्तार थी जहाँ दूर-दूर तक सपाटपने का गुदगुदा नर्मदिल सन्नाटा होता है। हर सामान्य चीज मे वह असामान्य रुचि लेती थी। खाने मे खूब मिर्च और गर्म मसाले-वाली चाट, या फिर घी मे तर सालन, गाने में लता मगेशकर, किताबो मे रोमास और जासूसी के चर्चे, और एक्टरो मे अमिताभ बच्चन। इन सब पर वह सौ जान स मरती थी। यू उसके कद्दावर जिस्म और कडकदार आवाज के परिप्रेक्ष्य मे इससे हल्के भावनात्मक आवेग की कल्पना हो ही नही सकती थी।

"ओये पुसी!" मैंने नक्की स्वर मे बुलकारा और सीढियो के छोर से आधा धड लटका दिया। कोई जवाब नही। मैंने अगल बगल ताका। पुसी के कमरे के बगल मे ही सुरुचि अस्थाना का थका-बुसा कमरा था, जहाँ हर चीज मालकिन की ही तरह दुबली, व्यवस्थित और शहीदाना ढग से मुर्झायी हुई थी।

"बाहर गयी है," सुरुचि की पतली पर्की आवाज आयी। सुरुचि की सुरुचिपूर्णता मे कोई चीज थी जो रहस्यमय रूप से मेरे भीतर अश्लीलता को जन्म देती जाती थी। मेरे भद्दे व्यग्या भाव प्रदर्शन से सुरुचि के सुरुचिपूर्ण नयनो का अलकृत आभिजात्य कुछ सिकुडा, फिर वह अपनी धूसर भलमन-साहत से ईषत् मुसकरायी—"आज कुछ देर यही बैठ लो!"

बैठना पडा, सुरुचि हमारी शालिनी मौसी की तरह सारे भारत की औसत मध्यवर्गीय माताओ का कर्मसिन मिनियेचर है। शिथिल मर्यादापूर्ण, सतत शुक्रगुजार! वह हर साल सामान्य सेकण्ड डिवीजन मे पास होती है और

लेकर, पति की छोटे शहर की स्थायी नौकरी
चतुराई तक, शिकायतें उनके हर बाता
पुराने अलबमों में वे बेहद पीली, कमनीय
पर अब तक यह रूप एक विराट मोटापे
सतत प्रफुल्लित माँ भी तो ऐसी खान-पा
चैन भरा वात्सल्यमय गद्गदपना था जि
मालिनी मौसी का मोटापा एक ऐसा गट्टा
निरंतर ढँककर भीतर बन्द रहने से आ उट
पोला। अनेकानेक रहस्यमय स्त्री रोग हुम
और सिर को दर्द से फटता हुआ बनाये रग
सदा दवाइयों और अकेलेपन की उत्कट ग
बावजूद इस सारी नामर्दी में कुछ था जो
था। मौसी का दुःख उस जीव का शब्दहीन दु
और स्थितियों के परिपालन के विरुद्ध अके
बिना हथियार डाले जूझ रहा है। अपनी तर
हार में वहीं हम सब भी शामिल थे।

छोटी मौसी का वजूद उनकी तुलना में द
जिस जगह मालिनी मौसी ने स्थितियों से टकरा
बगावत उठा ली थी उसी बिन्दु पर शालिनी
आजन्म बालिका-वधू बनी रहने की स्थिति
उनका रोशना गीशना, बोलना—सभी
अपने छोटे-से पुत्र से वे हमेशा अंग्रेज़ी में बात
करती थीं। उनकी भोली आकांक्षाओं की परि
स्वच्छंदी आदर्श में सबसे अपने नन्हे बेटे को
ही देनी हुई थी। ... उनके दुःख भी छोट
... अपार ... पहना
... पा जाना। ... और ...
... उस ... को ... थी जो
... जाने से उनका था। माँ के ... हुए ...

(पेट पकडकर मतली की मुद्रा, जीभ निकालकर पुतलियाँ घुमाना), खाते ही हमारा गैस बाय जाग जाता है, आऽऽह !"

निमलाजी की भूरी अनक्षिप पुतलियो मे हँसी सा कुछ कँपता है, "देखो सुधा, मसखरी छोडो, जो पका है सो खाना होगा। समझी ? मैं देख रही हूँ कि जब जब इम्तहाना का वक्त शुरू होता है, तब तब तुम गडबड करती हो। बस, दिन भर लटर सटर घूमना और झीकना। क्या शक्ल बन गयी है। चलो, उठो!" वे चली जाती है, जीसस की ताई, दधीचि की हड्डी, गाधी की चेली! मालूम है कि अब मैं जाऊँगी ही। एक हम ही साले है, घर से बाहर तक सब बडो की हुकुमबरदारी करने का! मैं घिसटती हुई डायनिंग हॉल के दरवाजे पर खडी होती हूँ। गर्मी और खाने की गध से भरे बातचीत के रेले चहुँदिश उमडे पड रहे हैं। ज्यादातर लोग तमयता से खा रहे हैं, लगातार बोलते हुए। हर मेज पर दाल और दही के धब्बे है। रोटियां चीमड हैं, दाल ठण्डी। "गरम कर दें?" परसनेवाली नेकनीयती से पूछती है। 'नही!" मैं कहती हूँ। मुझे मालूम है कि एक कटोरी दाल गम करने वह रसोई जायेगी और अय महाराजिना की डॉट खाती हुई फूहडपने से राख भरी कटोरी मे तनिक गरम दाल आधे घण्टे बाद ले आयेगी। लौकी के टुकडे मुट्ठी बराबर हैं, मिच म सराबार। आखिरी निवाला लेकर मैं थाली सरका देती हूँ। पर तब भी यह खाना उतना खराब मालूम नही देता, घर का खाना चाहे लाख बेहतर हो, पर जहाँ माँ हमारी कुर्सिया के चारो ओर व्यय फटफटाते हुए हम खाना खिलाना चालू करती हैं सारा स्वाद काफूर हो जाता है। कई बार तो लगता है कि हमारे-जैसे परिवारो मे खाना ही दिमागी उलझना का अचूक घरेलू इलाज बनकर रह गया है। चेहरा थका है ? जरूर विटामिन 'बी' की कमी है लो थोडा दही और लो, एक रोटी जरा ज्यादा घी के साथ। रात नीद ठीक से नही आयी ? खाना भारी हो गया होगा, आज हल्का बनवा देंगे। पढने का जी नही करता ? जरा च्यवनप्राश ले लेना। कोई नहीं पूछता जो कि पूछना चाहिए, और जो नहीं पूछना चाहिए उसके बारे म हजार सलाह!

हॉस्टल का लॉन फागुन की अपरिहार्य मौसमी मासलता से गदगद है। फूल ही फूल। लाख हटाने पर भी पाँखें चिपक-सी जाती हैं। धूल और

उसकी आलमारी हमेशा करीने से लगी रहती है, उसके कपड़े हमेशा इस्तरीदार और उसके बाल हमेशा तेल से चमकदार होते हैं। वह धार्मिक भी है। जहाँ उसकी सजिल्द किताबों की लाइन खतम होती है, वहा सदा एक शेर या हंस पर सवार देवी की फोटू या पालथीदार प्रतिमा स्थापित रहते हैं—चरणों पर एक अदद फूल या अगरबत्ती के भग्न ठूंठ समेत, आशीर्वचन, अभयहस्त। दरअसल यह लड़की इतनी पाक और पारदर्शी है कि उसको देखकर मुझे हमेशा उसके परे उसका भविष्य दीखने लगता है और यकीन मानें वह भी उतना ही सपाट और स्थिर है जितना कि उसका वर्तमान। मैं आज से दस साल बाद किसी दूर के कस्बे या शहर में अपने इंजीनियर/डाक्टर/अफसर पति के साथ बसी उसकी उस सपाट गृहस्थी की कल्पना करती हूँ जहाँ झक्क साफ़ उजास के बीच उसके दहेज को फरनीचर, व्रासो स चमकायी पीतल की मूर्तियां और इकेबाना के मृण्मय पात्रों के परे एक कोने में नन्हे दीपक से प्रकाशमान उसके पुश्तैनी देवता बैठे ऊँघ रहे होंगे। मैं मदुल स्वर में उसकी उनींदी जिज्ञासाएँ टालती, टोहती कुछ देर बाद लौट आती हूँ। 'पैकिंग करनी है न! अच्छा! कुछ चाहिए तो नहीं हमारे शहर से? सोच लेना! वाय्य!' स्टेज से नेपथ्य को खसकती मेकअप सुधारना। उम्दा पाट अदा करती है लड़की! थक्यू! थक्यू! थक्यू!

'खाना खाया? निर्मलाजी सीढ़ियों पर रुककर पूछती हैं। वे हॉस्टल की सबसे बुजुर्ग रिसर्च स्कॉलर हैं। वे विधवा हैं। कम उम्र विधवा। पर यहां उम्र में वे बाकी सबसे काफी बड़ी है—शान्त, गम्भीर अन्तर्मुखी। उनका यह अन्तर्मुखपना मालिनी मौसी की तरह एक चिड़चिड़ाहटभरी असहिष्णुता पर नहीं टिका है। उनमें एक ठहराव है जो बांधता है। हालांकि उनके चेहरे या शरीर में ऐसी कोई पागल कर देनेवाली बात नहीं। पर वे अपनी जगह हैं और अगर 'इज्जत' शब्द को इलास्टिक की तरह फलाकर हमारे परिवार न उसमें उन तमाम चुगदों को लपेटकर न रख लिया होता तो शायद मैं कहती कि मैं उनकी इज्जत करती हूँ।

"खाना खाया?' वे फिर पूछती हैं। उनकी स्थिर जिज्ञासा के आगे मेरे जैसे शातिर खिलाड़ी भी टालमटोल नहीं कर पाते। "नहीं,' मैं कहती हूँ। फिर अचानक मुझ पर नाटक हावी हो जाता है, 'आज लौकी बनी है

(पेट पकड़कर मतली की मुद्रा, जीभ निकालकर पुतलिया घुमाना), खाते ही हमारा गैस बाय जाग जाता है आऽऽह !"

निमलाजी की भूरी अनक्षिप पुतलियो मे हँसी-सा कुछ कँपता है "देखो सुधा, मसखरी छोडो, जो पका है सो खाना होगा। समझी ? मैं देख रही हूँ कि जब जब इम्तहानो का वक्त शुरू होता है तब-तब तुम गडबड करती हो। बस, दिन भर लटर-मटर घूमना और झीकना। क्या शक्ल बन गयी है। चलो, उठो !" वे चली जाती हैं, जीसस की ताई, दधीचि की हड्डी, गाधी की चेली ! मालूम है कि अब मैं जाऊँगी ही। एक हम ही साले हैं, घर से बाहर तक सब बडो की हुकुमबरदारी करने का ! मैं घिसटती हुई डायनिंग हॉल के दरवाजे पर खडी होती हूँ। गर्मी और खाने की गन्ध से भरे बातचीत के रेले चहुँदिश उमडे पड रहे हैं। ज्यादातर लोग तन्मयता से खा रहे हैं लगातार बोलते हुए। हर मेज पर दाल और दही के धब्बे है। रोटियाँ चीमड हैं, दाल ठण्डी। "गरम कर दें ?" परसनेवाली नेकनीयती स पूछती है। "नही !" मैं कहती हूँ। मुझे मालूम है कि एक कटोरी दाल गम करने वह रसोई जायेगी और अन्य महाराजिनो की डाँट खाती हुई फूहडपने से रास-भरी कटोरी मे तनिक गरम दाल आधे घण्टे बाद ले आयेगी। लौकी के टुकडे मुट्ठी बराबर है, मिर्च म सराबोर। आखिरी निवाला लेकर मैं थाली सरका देती हूँ। पर तब भी यह खाना उतना खराब मालूम नही देता, घर का खाना चाहे लाख बेहतर हो, पर जहाँ माँ हमारी कुर्सियो के चारो ओर व्यग्र फटफटाते हुए हम खाना खिलाना चालू करती हैं सारा स्वाद काफूर हो जाता है। कई बार तो लगता है कि हमारे-जैसे परिवारो में खाना ही दिमागी उलझनो का अचूक घरलू इलाज बनकर रह गया है। चेहरा थका है ? जरूर विटामिन 'बी' की कमी है, लो थोडा दही और लो, एक रोटी जरा ज्यादा घी के साथ। रात नींद ठीक से नही आयी ? खाना भारी हो गया होगा, आज हल्का बनवा देंगे। पढने का जी नही करता ? जरा च्यवनप्राश ले लेना। कोई नही पूछता जो कि पूछना चाहिए, और जो नही पूछना चाहिए उसके बारे मे हजार सलाहे !

हॉस्टल का लॉन फागुन की अपरिहार्य मौसमी मासलता से गदगद है। फूल ही फूल। लाख हटाने पर भी आँखें चिपक-सी जाती हैं। धूप और

खुशकी से बैलून-सा फूला धूल का चँदोवा ऊपर गुम्म तना है। और नीचे लहलह फूलों की क्यारियाँ। पीछे डाइनिंग-हॉल मे खाने-पीने का मध्यवर्गीय उत्सव ज़ोर शोर से निबटाया जा रहा है। सालन गर्म करवाया जा रहा है, कमरो से अचार और घी की घर से लायी छलाछल कटोरियाँ आ रही हैं, मँडराते कुत्तो को चपातियाँ फेंकी जा रही हैं, अचार की फाड़ियाँ चूसी जा रही हैं, बढ़ते वज़न पर शोक और सहानुभूति व्यक्त हो रहे हैं। घास, पत्थर, खाना, और कीचड़-सा चुहचुहाता प्यार। हाय रे बिना आसमान की दुनिया! कुछ साला तुक नही जिन्दगानी मे, तुक है ही किसमे ?

"क्या सोचा, चलोगी ?"

किशवर तमीज़ से कपड़े पहने धूप मे खड़ी अपने घने केश सुखा रही है।

"कहाँ ?" क्षण भर को मैं सचमुच नहीं समझती। मेरी आँखो मे धूप की चिलक है, और फूलो के तीखे रंग दूध की तरह उफना उफनाकर मेरे गालो पर टपक रहे हैं।

"यार, पिक्चर, और कहाँ !" वह भेद-भरे ढंग से सुर नीचा करती है, "या कोई और प्रोग्राम था ?" उसकी भद्दी जिज्ञासा का ठण्डा छींटा मेरा उफान बिठाता है।

"नहीं, आज नहीं !"

"आज नहीं तो फिर नहीं, समझ लीजिए जानेमन, कल तो फिर घर " वह गुनगुनाती हुई मुड़ जाती है। यूं उसे मुझसे हामी की आशा होगी भी नहीं। मैं उन घुट घुटकर राज़दाराना दोस्ती करनेवाली भली लड़कियो मे से हूँ भी नहीं जिनसे उसकी पटती है, और जो हर साल हॉस्टल से घर जाते वक्त ऐसे वात्सल्यपूर्ण आँसू रोकर विदा होती हैं जैसे डोली मे बैठ रही हो। मेरे भीतर उन्हें देख देखकर शायद कहीं कुछ सख्त हुआ जाता है, ठोस गुठली का-सा कड़ा एक आकार जो भावुक चपलता के इस विराट सार्वजनिक सोख्ते मे सोखे जाने से बेतरह कतराता है।

"अरे हाँ," किशवर पलटती है "तुम्हारी नयीवाली चप्पलें मैं पहने ले जा रही हूँ, तुमको तो कहीं नहीं जाना है न ?"

मैंने फिर माँ की चिट्ठी उठा ली। बाहर लिखा वाक्य पहली दफा पढ़ना ही भूल गयी थी— मुन्ना चाचा से एक बार जरूर मिल लेना। उनकी तबीयत, सुना, इधर फिर खराब थी। कहना, माँ ने याद किया है।"

हुँह। याद किया है! याद किया है! मैंने विकराल मुद्रा बनायी। दुनिया भर के अहसानों के टोकरे-डालियाँ घर घर पहुँचाने को मैं ही हूँ। धूप में पिटी शक्ल बनाये दुनिया भर के यहाँ जा बैठो और संजीदा चेहरा बनाये हुए उन्हें गम्भीर आवाज में बताते सुनो कि कैसे इस महीने के अन्त में जब मंगल शुक्र की गोद में जा बैठेगा, उनका उदर विकार खत्म होगा और कैसे जब उसके अगले महीने चन्द्रमा राहु के पेट में घुस आयेगा तो उन्हें कफ-पित्त विकार सताने लगेंगे।

तभी धाड़! जैसे फिल्मों में होता है, दरवाजा खुला! अचानक जैसे नेपथ्य से इंगित मिला हो। यह पुसी थी। दरवाजा उसने लात मारकर खोला था क्योंकि हाथ खाली नहीं थे, फिर भड़ाभड़ उसने कई पैकेट मेरी तरफ उछाल दिये, मेरी हृदय दहलानेवाली चीखों पर कान न धरते हुए।

"ओय खोत्ती देख क्या-क्या उठा लाये हम लोग!" फिर हम लोग उसकी खरीददारी देखने में व्यस्त हो गये। पुसी उन सदाबहार लोगों में से है जिनके लिए जिन्दगी में दो ही रंग हैं—या तो सफेद और या काला। और दोनों के बारे में उसकी राय दोटूक होती है। लिबलिबाहट का नाम नहीं। चाहे विषय उसका बॉयफ्रेण्ड हो या ब्लाउज की सिलाई उसकी बातचीत एक ही खुशमिजाज ढंग से दोनों की बखिया तुरत टटोल डालती थी। आज वह अपनी खरीदी एक नयी चप्पल पर लहालोट थी। पहनकर, उँगलियाँ सिकोड़कर, टखने घुमा फिराकर वह अपने पैरों पर बेतरह रीझी जा रही थी। उसके बॉयफ्रेण्ड ने कभी उसके पैरों को लेकर कुछ तारीफभरे वाक्य कह डाले थे। तबसे वह अपने पैरों की हिफाजत अपने कुँआरेपन की तरह अटूट भक्ति भाव से किया करती थी। आत्मलिप्त लोग अपनी चरम मुग्धता के क्षण में कैसे साफ और पारदर्शी हो जाते हैं, सोते हुए बच्चों की तरह! जभी मुझे लम्बे बालों पर कंघी करती अधेड़ औरतें, कंचे खेलते बच्चे और पनवाड़ी की दुकान में शीशा देखकर सिगरेट सुलगाते पुरुष हमेशा अपनी एकाग्र स्थिरता से खींचते हैं।

पुसी की गाडी आज ही रात जाती थी। मजे की बात तो यह थी कि उसका वॉयफ्रेण्ड भी उसी गाडी से जा रहा था।

ट्रेन उसके शहर भी जाती है कि नहीं ?" किशवर कंघे से दाँत खोन्ती दरवाजे से टिक्कर खडी थी। पुसी ठहाका मारकर हँस पडी, "आगरे से दूसरा कनेक्शन ले लेगा। कुछ ही घण्टे का फर्क तो है।"

घर ले जा न उसे," किशवर हँसने लगी।

पापा से कहना—पापा, देखो आपके वास्ते क्या सौगात लायी हूँ। आपके जगल म मगल कर देगा।"

पुसी के पिता का तराई के किसी हिस्से म एक विराट फाम था। अँगरजी का वाक्य उधार लें तो ये लाग पैस म लोटत थे, पर पुसी की बातो मे लगता था कि शहरी अँगरेजियत से अलग-थलग उनकी दुनिया अन्तत एक वनमानुसी रूप से जिस्मानी और मर्दों की थी। आये दिन उसके पिता या चाचा किसी-न किसी नौकर या कमचारी का कचात धुन डालते थे या उनकी बीवियों पर हाथ डाल दते थे। तराई के निपट अकेले मे सारी आबादी से कटे छँटे साल के छ महीने वनैले जानवरो और पहाडी मजदूरो के बीच काटने के उनके पास दो ही बेचूक इलाज थे। अँग्रेजी शराब और देसी औरत। पुसी की माँ जब-जब मर्दों पर 'फितूर' सवार होता तो फाम से दूर शहर के बँगले मे शिफ्ट कर जपजी साहिब का अखण्ड पाठ, गलीचो की सफाई-सुफाई वगैरा कुछ करवा लेती। इधर 'फितूर' फाम से विदा होता, उधर वे वापस पहुँच जाती। "औरत हमारे घर म जूती तो है, पर जरा पालिश-पूलिशवाली।" पुसी ठहाका मारकर हँस पडती। सबको मालूम था कि अन्तत उसके वॉयफ्रेण्ड से उसकी शादी नही होगी क्योकि वह जात का बनिया और औकात का थोडा कम था। पर पुसी को जाहिर ही इस बात को लेकर कोई महीन किस्म के दुख नही थे। उसने किसी अपने घर के ही से आदिम ख्यालातवाले मरद की तिल्लेदार जूती बनकर चटखने की भवितव्यता मन मे स्वीकार कर ली थी, और इस वक्त वह हँस हँसकर हमे बता रही थी कि कैसे हर फितूर के उतरने के बाद उसके पापा उसकी मम्मा के लिए नये गहने गढाते नये कपडे बनवाते मम्मा की समझदारी पर पानी-पानी हुए जाते हैं। मजाल है कि उन लोगो की

रखेलें घर की ब्याहताओं के तनिक भी मुह लग जायें। पुसी का चेहरा विह्वल दाम्पत्य के रूमान मे मेरी माँ की तरह चमक उठता था और मैंने अचानक अपने भीतर उनके तुरत मेरे कमरे से निकल जाने की घनघोर कामना का घुमड़ता पाया।

पुसी के जाने के बाद कमरे मे पसीने और क्रिश्चियन डियार के सेण्ट (चूयाक वाले फूफा! चूयाक वाले फूफा!) की खुशबू भटकी भटकी-सी आती रही। बन्द दरवाजे की फाँक के नीचे खून की-सी गाढ़ी माघ की हवा भीतर आने को छटपटाती रही थी। भटके हुए कुत्ते की तरह दरवाजा कुरेदती हुई। क्या है जो हम हरदम अपने भीतर टटोलते रहते हैं पर जिसे शब्द नहीं पकड़ पाते, सिर्फ उसकी आहट भर सुन पाते हैं। दुःख? दिल? दिमाग? दर्द? दुम? दन! मेरी फेंकी चप्पल उस बेहद लम्बी टाँगवाली मकड़ी को न लगकर कुछ नीचे लगी और लदद से औंधी हो लुढ़क गयी। मकड़ी फुर्ती से ऊपर चढ़ने लगी जहाँ वह नया जाल कातेगी। धत तेरी की।

अच्छा, इस सबकी शुरुआत कब हुई होगी? यानि कि सच मे सोचो तो।

"आ गया," बाबू की आवाज।

"आ गया?" अम्मा, नाजुक जमुहाई लेकर रूमानी किताब तिपाई पर रखती है।

भैया। भय। भूख। भुरकुस। छोटे और मेरा शतरंज थम गया है। रसोई म कोई कम्बख्त कुछ गिराता है, झन!

'कुछ खाओगे, या कहीं " माँ के सुर मे एक-बटा चार शहीदानापन, एक-बटा चार वैराग्य, एक-बटा दो गूढ़ अभियोग।

"ये कोई तमीज है?" बाबू का तनिक तीखा सुर। तिलमिलाहट। तीर। तेजी।

"सारे लोग तुम्हे बधाई देने आये और आप दिन भर घर से लापता! यानि कि घर कोई-कोई क्या कहते है तुम्हारे लिए हो-हो-होटल है?" छोटा हँसने जा रहा है। मैं क्रूरता से चिकोटी देती हूँ।

'देरी हो गयी।" भैया कुर्सी म धँसकर भोलेपन से रिसाला उठा लेते

हैं। याहवावावा। मैंने बताया न कि हम लोग एक बेहद नाटकीय परिवार हैं। हर अदा बेचूक।

'कुछ तो पा लेने तुम्हारी ही पसन्द " माँ उठती है।

'कह तो दिया कि नहीं।'

आग्नेय दृष्टियाँ मूक शाब्द का विनिमय। माता पिता का नेपथ्य में प्रस्थान। टिक टिक टिक घडी की तरह टिकटिराता डर, नाभि के नीचा खींच।

टिक टिक टिक, प्यारे दर्शको—

'तुम्हारे पास एक अन्तर्देशीय होगा ?" सुरुचि बिल्ली-कदमों से न जाने कब दरवाजे के पास आ खडी हुई थी। मैं उछलकर उठ बैठी। वाकई की घबराहट में (कसम ले लो)। पर फिर नाटकीयता हावी हो जाती है, *सीना पकडे मैं झुकती हूँ।*

'कइसन उरात हो बूढ मनई का ? मान लेव मुदा हारट फेल हुई जात, तो ?"

अन्तर्देशीय लेकर सुरुचि हँसती हुई चली जाती है। मैं चप्पल घसीटती हुई दफ्तर की ओर चल देती हूँ, रजिस्टर में दस्तखत करने। मुन्ना चाचा के ही घर में पैठा जाय। जरा चिमगोइयाँ ही कर लें कि इम्तहानों से पहले हडताल का नक्षत्र-योग बनता है कि नहीं ? वर्ना टायफाइड को अगले हफ्ते इशू करायें। पिछले साल भी जब मकर में शुक्र या शनि जैसा कोई खुड-पेंची ग्रह आ घुसा था तो यूनिवर्सिटी में लाठीचार्ज हो गया था।

"वकीलों के घर से वकालत टपकती है। भया ने एक बार कहा था। और 'जाहिलों के घर से जहालत।' यह छोटके था, और हम लोग देर तक लोट-लोटकर हँसते रहे थे। मुन्ना चाचा बाबू के किसी दूर अगम्य रिश्ते से भाई लगते थे और हॉस्टल रजिस्टर में मेरे अभिभावक के रूप में दर्ज थे। यूँ उनका एक पुश्तैनी मकान और कुछ दुकानें हमारे शहर में भी पडती थीं जिनकी दीवानी फौजदारी के सिलसिले में वे हमारे घर प्राय आ टपकते थे। उनके आते ही से बस तुरत हमारा घर भृगु महाराज की पर्णकुटी में तब्दील हो जाता। चाय की प्यालियाँ लपालप लपकने लगतीं। अखबारों के पन्ने खुल खुल जाते। राजनीति और भविष्यवाणियों का

चहचहाता मीना-बाजार। रोशनी। चहलपहल। चुहलें। चिमगाइयाँ। बाहर बठघरा म बँधे कुत्ते गुरति रहत, अँधेरे में खोखियाये थूयन उठाये हुए।

कौन है ? कौन है ? कौन है ?—

एक नक्षत्र उगता है, एक नक्षत्र डूबता है। फिर फिर उसी धुरी पर घूमता है मेरा प्रायद्वीप।

सुबह शाम।

सुबह शाम।

चिड़ियाँ पागल हो गयी है। खौरी कुतिया भी। "दूद देखो इसके, सात-सात जनकर आयी है कूलर के पीछे," नौकरानिया का झुण्ड खिल-खिलाता है।

"ख खै ! मैं इन चिड़िया की गदन मरोड दूगी इस कुतिया की भी, किसन कहा था इससे कि कि "

"कहन से क्या होता है, आजकल इनके चद्रमा पर राहु की छाया है न " मुना कहत है। माँ रेशमी नाटकीयता से चश्मा उतारकर आंखा के पपाट सहलाती है। तुमने कभी किसी के हाथो पर तरस खाया है क्या ? मुडर पर दुबकी खन्ना साहब की बिल्ली सुरई के फूलो के बीच हँसती है। कुछ दर बाद उसकी हँसी भर रह जायेगी और वह लुप्प ! माँ की बाँहा के नीचे पसीन के अद्ध चद्राकार निशान है। कनपटियाँ कुछ-कुछ सफेद हो रही है। मालिनी मौसी कहती है कि जीजी, तुम अपने बच्चा को ज्यादह ही मोह करती हो। वे खुद मोह करन की बजाय पेट घटाने को हर सुबह यौगिक व्यायाम करती हैं। नाश्ते मे सूखा टोस्ट और काली काफी लेती है। एक हफ्ते तक। उस एक हफ्ते वे बच्चो, मियाँ और नौकरा पर झल्ला-झल्ला कर घर को लस्त बना देती है। फिर एक दिन वे कहती है कि टु हैल विद इट ! और आलू के पराँठे और चाकलेट आइसक्रीम दाबकर खाने लगती हैं। उन्होने हर चीज मे हाथ आजमाया है। उन्होने एक हफ्ता टाइपिंग, एक महीना शास्त्रीय गायन एक साल पेण्टिग और डेढ साल फ्रेंच सीखी है। पर हर चीज को उठाते ही उन्हे लगता है कि अब उसमे तुक नही रहा और यहाँ से वे वैराग्य पर आ जाती हैं। बाहरी दुनिया से कहती हुई कि तू मरे ठेंग पर।

मालिनी मौसी मेरी तरफ अपमय ढग से,देखकर कहती हैं कि आखिर कार ससार में कोई अपना नही होता। शालिनी मौसी बचकानी अंग्रेजी में कहती हैं कि माँ से ऐसे नही बोलते—मैं ता समझदार लडकी हूँ न ? हर बार तीना स्त्रियाँ अतत मिलकर पूछना चाहती है कि यह भी नहीं, वह भी नही ता तुम्ह चाहिए क्या ? क्या चाहिए तुम लोगा का ? कुतूहल, असमजस और हताश प्यार से उनके चेहरे कटोरा की तरह छलकत हैं। मैं अब प्राय अखबारो मे घर स दूर मिलनेवाली नौकरियो के इश्तहार पढती हूँ, विशेषताओं का मिलान करते हुए। जैसे आँखें बद कर राम शलाका प्रश्नावली निकाली जाती है। लेक्चरार ? यानि तमीजदार धोतियाँ, चॉक की गध और दडियल सहकर्मी, जो बहुत बालत, बहुत चाय पीते और बहुत टाँगें हिलाते हैं। रिसेप्शनिस्ट—यानी एक इच मुस्कान, पिन से अटकाई महकती साडी, रटे हुए कटाक्ष, दुहरे अर्थोवाले वाक्या की चतुर काट, जब फ्रासीसी मर्दाने इत्र से महकते बिजनस एक्जीक्यूटिव जरूरत से ज्यादा पास आकर बातें करने लगते है। रगकर्मी ? यानि हथकरघे की धोतियाँ, एक छटाँक सुरमा, चाँदी के गहने, सूजी-सूजी कीचड भरी आँखो-वाले पुरुष मित्र जो ऊँचे ऊँचे ठहाके लगाते हैं। एक रूमानी समय था जब मैं सोचती थी कि कुछ होना ही है तो द्रौपदी-सा कुछ बना जाये। नही ' यानि आओ, रहो और अब जाओ—कोई मलाल नही कोई शत्रुता नही—जो भी प्यार से मिला हम उसी के—पर पापे चल नही सकता, जो पुरुष मैंने देखे हैं न, बसा मे, घरो मे ट्रेनो मे—सब के-सब जकडनेवाली जात के हैं। वे धरोहर नही स्थावर सम्पत्ति चाहते हैं जिसके चारा तरफ काँटेदार बाड खीचकर वे बोड टाँग दें—आम रास्ता नही उहुक, कुछ और ही तरकीब तलाशनी होगी।

मैं बिना दस्तखत किये लौट आती हूँ। नही जाऊँगी। माँ पूछेगी तो हजार तरीके हैं टालने के। हूँह ! मेरी ठाकर खाकर पत्थर गाली-सा उछलता है। कुछ नही तो एक अभद्र किस्म का अजूबा तो बना ही जा सकता है न ? कठिन तो जरूर है यह हो जाना पर साफ-शफ्फाफ और अतिम हल भी तो यही है। बस।

किशवर सजी धजी बीच रास्ते पर थी। साथ म पाँच छ और।

"सोच लो अभी भी, चलोगी ?"

मैंने सिर हिला दिया। फिर किशवर मेरी चप्पलें पहनकर चली गयी, फदर फदर।

टन ! गजर कुछ बजाता है। समय,? भय ? कबूतरो का एक जोडा पर फटफटाकर उडता है, तिनके, गद तिनके। मैं अपना ही हाथ कसकर पकडती हूँ। हवा म अचानक धूल घनी हो गयी है। सास भी नही ली जा सके, इतनी। कलेजे पर सफेद-सा कुछ शिकजा-सा कुछ, कसता है। डर का रग काला नही, सफेद होता है। होस्टल सुपरिण्टेण्डेण्ट लीला मिश्रा मेरी *हितचिन्तिका है। मेरे कई हितचिन्तक है। थे। लागो का मुझपर से विश्वास* उठ रहा है। प्यारे भाइयो और बहना मैं कहती हूँ यकीन मानिय कि मैं इस सबके काबिल कतई नही, वस जैसी आपकी श्रद्धा

"कैसी तैयारी चल रही है ?" वे पूछती हैं। मेरी तलबी हुई है। पशी। अभियोग। लीला मिश्रा, तुझे पता है कि तेरे चेहरे पर हल्की मूछें हैं प्यारी। इतनी लम्बी कि तू उन्हे चूस सकती है।

"हँसा मत !" लीला मिश्रा की आवाज नुकीली लाल पेंसिल है। मने जो पूछा है उसका जवाब दो ! इस साल पर्चे कुछ बेहतर करन का इरादा है या पिछले साल की तरह ?"

तुझे मतलब ? यानी कि म साली कोई इसान नही, टेलीफून की डायरेक्टरी बन गयी हूँ ? ऐं ? कि पन्ना खोलो और नम्बर पता सब तुरन्त मिल जावे। क्यू ? गिव मी वन रीजन !

'इतनी आशाएँ थी हमे तुमसे" लीला मिश्रा की मूछदार आवाज भर्रा जाती है, "यूनिवर्सिटी मे आयी थी तो हम सब तुम्हे दिखाकर कहते थे कि यह लडकी बडी दूर जायगी। पहले साल अच्छा भी किया पर पिछले साल ! उफ ! उफ ! मुझे कितना धक्का लगा, बता नही सकती।" लीला मिश्रा के चौकोर चेहरे पर अध्यापकीय विषाद की थरथराहट है। पर मेरा वज्र कठिन वक्ष कँपता क्यू नही ? काँप र मन मूढ मेर !

"तबियत-वबियत तो ठीक है न ?" बडे लोगों की आवाज पूछताछ के बीच यकायक नम पडे तो मरे भीतर की खतरे की सुई पागल होकर बचने का लाल सकेत देने लगती है। चेता चेतो रे नौजवान !

घर को चिट्ठी विट्ठी लिखती हो ?'

जी !'

ममी ठीक हैं ?"

"जी !"

' मेरी तरफ से याद कर देना । इतनी भली, इतनी "

मेरे दिमाग न रिसीवर उठाकर रख दिया है, लीला मिश्रा की चहकती मैत्री भरी आवाज मेरी पारिवारिक पृष्ठभूमि के चाद-तारे टूगती रह जाती है । इतना गच्चा खाकर भी तुम परिवार मे सुख खोजती हो लीला मिश्रा ? यह भुलाकर कि तुम्हारे मा-बाप न तुम्हे अपन विजातीय प्रेमी के साथ शादी करने की अनुमति मरते दम तक न दी, और जब तक उनका अपना पटाक्षेप हुआ तो मेनोपॉज के साथ तुम्हारे होंठो पर मूछ उग आयी थी और उसके माथे पर से बाल उड चुके थे, और यद्यपि तुम्हारे साथ के लोग तुम्हारे अखण्ड व सच्चे प्रेम की दुहाई देते रहे, सच बताओ इस उमर मे बात कभी वही रह सकती है ? यानि सच मे ?

प्लेटफाम पर बहुत भीड थी । छुट्टियाँ उमस, आधी तपन आधी खुनक । सामान रखकर मैं खिडकी के पास जा बैठी । धडधडाता किताबी ठेला आ पहुँचा—इगलिश मैगजीन ? न्यू मैगजीन । मिल्स एण्ड बून्स, पेरी मेसन !

'ये लीजिए बेबी नया कैरेवन ! ढेरी टटोलत उसके उत्तेजित हाथ कापते हैं । वे झुर्रीदार है, उसकी कमीज के फटे कफ भौंडेपन से रफू किये गये है और नाखून बेतरतीबी से कटे हैं । रुआंसी होकर मैं अपना ओछापन ढापते हुए अम्मा के लिए तीन चारेक रूमान, छोटके के लिए दो खूरेज रोमाचक उपन्यास ले लेती हूँ जिन्हे प्रकट मे उपेक्षित दिखाते हुए अन्तत हम सब रस ले-लेकर पढेंगे । मैंने कहा न कि हम सब एक खासे ड्रामाई परिवार के सदस्य हैं । अपनी-अपनी नाटकीयता से वाकिफ पर आदतों से लाचार । सब । सिवाय हमारी माँ के ! यह नहीं कि माँ नाटकीय नहीं हैं । हैं और शायद हम सबसे दसेक डिग्री ज्यादे ही । पर व उन निखालिस नाटकीय लोगों म स हैं जिनकी नाटकीयता म सशय और हँसी की

कोइ एसी गद्दार फाक नही है, जिससे कभी भी अपनी सकुचाई पडताल का डर पठ पाये। उल्ट उनकी अपन और अपन नाटकीय मूल्या म अटूट आस्था देखकर मेरी सास कभी-कभी अचरज से थमी-की थमी रह जाती है। पचीस सालो से व बाबू के साथ यह गृहस्थ धम निवाह रही हैं और हर महायुद्ध, महामारी, आमचुनाव और जचगी के बावजूद हर साल उसी तन्मयता से खाने-पीने, कपडे और बच्चो की चर्चा करती पायी जाती हैं हर जाडे मे गाजर का हलुआ, पानी का अचार और हर गर्मी मे आम का पना और नीबू की शिकजिया बनवाती हैं। हर विगत शादी म दिये गये दहेज और तीयल के कपडो, गहनो के सैंटो के नमूने और माडल याद रखती है, और घर की हर शादी और जचगी की सालगिरह उनके पोरो पर टिकी हुई है। उनसे आप पूछिए कि फला आमचुनाव किस साल हुए थे वे तुरत अलाँ के बडे या फलाँ की मझली की जन्मतिथि स जोड या घटाकर सही तिथि आपको बता देंगी। आप पूछिये कि चुनाव मे कौन-कौन पार्टिया थी, यह उन्हे याद नही हागा, पर वही उस साल हुए बच्चे का वजन और उस *जचगी के अय सारे ब्यौरे व आपको कम्प्यूटर की मुस्तैदी से बता जायेंगी।* पति से बच्चो तक एक काल्पनिक चौक पूरकर व उसके भीतर मजे से आन बठी है और उनके ऊपर उन्ही के चेहरे से मिलती जुलती एक पूजनीय तस्वीर टँगी है, उनके दैवी अध्यात्म की। मा बस एक झटका भर देती कि हम सब नाच उठते हैं—नगिन गिन गिन, तनक धिन धिन !—हैं नही, थे—क्योकि जिस दिन से हम यह भाप पाये, उसी दिन से वह बात नही रही। बावजूद मुन्ना चाचा के सारे ज्योतिषीय लेखे-जोखे के ! सुना है भृगु-सहिता बनानेवाले भृगु महाराज की फलित ज्योतिष भी कभी-कभी गड बडा जाया करती थी। तो हम तीनो भाईबहन व ही गडबडाये ग्रह फल हैं, धुरी से छिटके नक्षत्र। जन्नाटेदार धूमकेतु। अग्निमुख उल्काएँ ! अब तो बार-बार खदेडे जान, धकियाकर अभियुक्त के कठघर मे कीले जाने और टेंटुवा दबवाकर बुलवाय जाने की नाजायज प्रक्रियाआ से गुजरते-गुजरते हम इतनी खतरनाक तौर स नाजायज हो चुके है कि हमारा दिमाग दराँती हो गया है और हाथ हथौडा ! बावजूद इसके कि अकेले कम्पार्टमेण्ट म बठन म मेरी टाँगें अभी भी हल्के-से थरथराती हैं और बाहर प्लेट

फाम पर हुलकती, हँसती, हुलबलाती भीड को देखकर मेरे गले मे मछली के काटे की तरह कुछ अटक-अटक जाता है। मुझे पूरी तरह मालूम हो चुका है कि इन हसीनाओ, और साड-सी चकली छातीवाले नौजवानो की तुलना मे मेरा दिमाग किसी कदर वजनी और तर्रार है, कि जब परस्पर व्याहे जाने और प्रजनन क्रिया म लीन होने के बीच वे अपने को एक-दूसरे की छाया से भी घिनाता पायेंगे मेरा जहन जगली खरगोश की तरह फुदकता भेडो के आस-पास थूथनी उठाये ताजा हवाएँ सूँघ रहा होगा। पर तब तक उनके पास अपनी बेशुमार चीजें होगी उनकी पार्टिया, उनके घर, उनके फूलदान, उनकी त्रासो से चमकाई बुद्ध की मूर्तियाँ और आलमारी मे झाड पोछकर सजायी पेंगुइन मॉडर्न पोएट्स सीरिज की किताबें, उनके बच्चो के चमकीले स्कूलो की चमकीली रपटें और उनके अखबारो की सुर्खिया, और साल दर साल उनकी टेक लेकर वे मेरी माँ की तरह हर रात दस बजे एक प्याला दूध के साथ एक चम्मच च्यवनप्राश खाकर तृप्ति से भरे हुए सो जायेंगे जबकि अधेड होती हुई मैं सेकण्ड स्लीपर के ठण्डे काले जँगले पर अपना खिचडी वाला और असन्तोष से भरा जिद्दी सिर टिकाये रहूँगी निद्राहीन अकेली और क्रूर—लोहा मेरी उँगलियो के नीचे ठण्डा और सख्त है। पर लोहे पर मेरी उँगलियाँ गर्म और कोमल हैं। कम-से-कम अभी तक। पर कब तक? नही, उधर नही, किंग लियर अपने बूढे विदूषक से कहता है, 'उस दिशा मे सिर्फ पागलपन का फैलाव है।'

"आ सकती हूँ?" मेरी मा के-से अकाट्य भोलेपन से वह हँसमुख आवाज पूछती है।' मैं सिकुडकर जगह करती हूँ। होल्डॉल, टोकरियाँ सूटकेस। अटैचीकेस, थर्मस सुराही (अरे रे रे रे लडकी! लडकी!) "बच्चे! उफ बहुत गर्मी है नही? आवाज परो से जूझती है। हिलती-डोलती ट्रेन चल दी है। मेरे भीतर आडे तिरछे ख्यालात पक्षियो की तरह पर फडफडाते हैं। मैं गमगीन सी हूँ। उससे पक्का सीधा नही हो रहा है। वह हम छोडकर कम्पार्टमेण्ट की हर दूसरी दिशा को हवा सूँघ रहा है। मन्न ना शायद मुझे भी करनी चाहिए थी पर ऐसे समाजोपयोगी मौका पर अचानक मैं ठण्डा पड

जाती हूँ। मुझे मालूम है—मालूम है—मालूम है, कि यह गलत और खतरनाक ढग से समाज विरोधी बात है और यह भी मालूम है कि अगर मेरी माँ यहाँ होती तो अपनी अदश्य डोरियो मे एक का झटका दती और मैं तुरत खडी होकर डगमगाती ट्रेन मे अपने को सँभालती रथ की धुरी मे अपनी उँगली फँसा दती। पर जनाब, आप मुझे यू अपदस्थ नही करेंगे। मै पीछे की ओर पसरती ही नही, पर भी ऊपर कर लेती हूँ। जो औरते उमस के मौसम मे ज़री की तिल्लेदार नायलौन की नीली साडी और लाल चप्पल पहने पाच से कम उम्र के दो बच्चो को लिये अकेले सेकण्ड स्लीपर के डब्बे मे सफर करने का वीभत्स शौक पालती हो, पालें, मुझे उनसे कुछ नही करना।

पखे को तनिक तिरछा कर वह अतत मुडती है। हवा के बहाव म ता कोई फक नही हुआ पर पखा तो हिल गया। तेली रे तेली, तेरे सिर पर कोल्हू! सुख नही मिली ता क्या हुआ, तेरा सिर तो थक गया। उसका चेहरा विजयगव स चमक रहा है—वह मुस्कराती है, मैं भी मुस्कराती हूँ, फिर मैं आँखें ब द करन का नाट्य करती हूँ। मुझे नही करनी पसीजते बहनापे की व्यवस्था! वह कुछ-कुछ तुतलाते हुए अपने छोट बच्चे से खेलन लगी है। जी हाँ, मुझे मालूम है कि इस दश्य की घरेलू स्निग्धता को देखते हुए हमारी पारिवारिक अपेक्षा क्या होती।—"कहाँ जा रही हो?' वह पूछती है। उसका चेहरा अभी भी वात्सल्य से भीगा भीगा है। मैं शहर का नाम लेती हूँ। 'तब तो हम लोग आपसे पहल ही उतर जायेंगे।" वह मरे बिना पूछे बताती है। फिर उसी साँस मे यह पूछकर कि क्या मैं यहाँ पढती हूँ वह यह भी बताती है कि उसके पति भी यही पोस्टेड हैं और यह कि अरे, तब तो तुम्हे यहाँ कभी नही देखा! जस कि उनके दखे बिना मेरा अस्तित्व ही स दिग्ध है। सिडी कही के! पर मरा कोना इतना गुदगुदा व सुखद है और इतनी जोरा से नीद आ रही है कि गुस्सा भी नही आता। अब वह एक सडबिल्ली-सी लडकी प्रभा क बारे म पूछ रही है जा कि हमारे ही हाम्टल मे रहती है। तुम जानती हो उसे?"

"हाँ मैं जानती हूँ" मैं कहती हूँ, अपनी वाचालता पर विमुग्ध! अचानक एक ज नाटेदार नाटकीय झूठ बोलने की एक बेपनाह उतावली चील

की तरह मेरे भीतर डैन फैलाये छा जाती है। "अरे प्रभा? वह तो मेरी पक्की सहेली है," मैं कहती हूँ "और पढ़ने में तो इतनी तेज है कि बस!"

"अच्छा?" उनका स्वर संशय भरा है, पर खुश-खुश। उसकी शादी उनके चचेरे देवर से होनेवाली है न! "देखने में अच्छी है यह तो सुना था, पर पढ़ाई में—"

"अरे लीजिए, इस बात को कौन नहीं जानता?" मेरे भीतर का लबार बगटुट भाग निकला है, फिर मैं एक लम्बी सोदाहरण व्याख्या से समझाती हूँ कि दो तरह के विद्यार्थी होते हैं, एक तो रटन्त विद्यावाले जो दिन रात किताबों में मुँह डुबाये अपना रंग रूप तबाह करते रहते हैं और इम्तहान के दिनों में यूँ लगते हैं—मैं एक चूसे दशहरी आम की गुठली सा चेहरा बनाकर आँखें मींची कर लेती हूँ। मेरी श्रोता ठठाकर हँसती है—"आप तो एकदम कार्टून खींच देती हैं।" अब मैं अपनी वक्तता के सम्मोहन में पूरी तौर से सराबोर हूँ "एक वे विद्यार्थी होते हैं जो कि हँसते-खेलते इम्तहान से कुल दो महीने पहले इत्मीनान से सब पढ़-पढ़ाकर इम्तहान दे आते हैं। बस, धमाधम मस्तकलन्दर। अब प्रभा में यही तो खासियत है। न तो वह रट्टू है, और न ही फिसड्डी! और फिर बेहद शालीन लड़की है। छिछोरापन तो बिल्कुल छू भी नहीं गया।" मैं माँ की आवाज में बात को घरेलू भावुकता का आवश्यक पुट देती हूँ। मामला जम गया है!

"हाँ, यही तो बड़ी चीज है" वे कहती हैं, "वरना उन्हें बड़े शहर की पढ़ी लड़की लाने में यही डर लगता है कि कहीं बहुत तेज-तर्रार न निकल आये। जो प्यार क्या नस पकड़ी है आसामी की। हो हो हो, मैं मन ही मन लोट रही हूँ। घर जाकर भैया और छोटे को बताऊँगी कि ट्रेन में एक ठो शादी भी तै करा आयी हूँ तो एकदम मर जायेंगे। यानि कि मैं और नाऊगिरी! वह भी उस सड़बिल्ली प्रभारानी के लिए जो दुपट्टे से पेन की रोशनाई पोछती हर बार नोटस डिक्टेट करते प्राध्यापकों को अपनी एडीनायडल आवाज से टोकती रहती है—"व्हाट सर? कुड्ण्ड फालो!"

फिर वह मुझे बहुत सारी और स्वर्णिम खबरें दे डालती है कि किस तरह उनके देवर के लिए कितने कितने रिश्ते आये थे मोदीनगरवाला ने तो हिण्ट भी डाली थी कि पूरी मिल उनके नाम कर देंगे, उनके और है ही

कौन ? पर देवर की एक ही 'कण्डीमन' थी कि लडकी गोरी हो और अग्रेजी स्कूल की पढी हो। सो फिर यही हा कर दी। यू उनका देवर है भी बहुत कारिदा लडका। "घर गहस्थी की तो ऐसी उस जानकारी है कि हम-तुम्ह न हो! अभी कम्पनी की तरफ स महीने भर को जापान गया ता एक तो लाया मिक्सी, एक पूरा डिनरसेट प्लास्टिक का, एक इम्पोर्टेड टेलीविजन, और सब भाभियो के लिय वूली जार्जेट की साडियाँ और भतीजियो को सण्ट लिपस्टिक। अब बताओ आज के जमान म इतना कौन मानता है?'

"सही है! कोई नही!" मैं गम्भीरता से बत्ती उकसाती हूँ। पर वसे काई समझ ले कि उसे भले-बुरे की परख नही, ऐसा नही। वह बताती है, उसका तो कहना है कि शादी के बाद लडकी को कतई बाहर काम नही करन दगा। घर से बाहर लडकी निकली नही कि बिगड गयी! मैं पढनेवालियो की नही, काम करनेवालियो की कह रही हूँ।" वे पुचारा देती है, और हिलती ट्रेन मे आश्चयजनक मुद्राओ म तिरछी-सीधी होती होती अन्तत आठ औंस दूध घोलकर छोटवाले के मुह म बोतल खास देती हैं— जल्दी पी ले, पन्द्रह मिनट मे स्टेशन आता होगा।" सचमुच ट्रेन कुछ देर बाद धीमी होन लगी है और मैं पाती हूँ कि मैं उनके बच्चे, टोकरियाँ दूध की बोतलें, चम्मचें और स्टील की गिलसिया बटोरवा रही हूँ। 'अच्छा नमस्त, बडी खुशी-खुशी वक्त कट गया, नही?" मैं उनके बच्चे का गाल थपथपाती हूँ, कुछ कहती नही। उन्हें काई लेने आया है वे चली जाती है।

फिर गाडी चलने से पहले दो मोटी खमीरी पजाबनें मलमली दुपटटा और चैनदार जडाऊ कणफूला समेत आकर धँस गयी थी। कपडे की खाल-दार अटचियाँ, माटे होल्डाल। पीतल का कटोरदान, जिसके उपर खुरपे जितनी चम्मच खुसी है। मुझे उनमे कोई रुचि पैदा नही होती। अब मैं बहरी गूगी हूँ। "या रब्बा! तू ही पालनहार!" एक कहती है, दूसरी ओऽम! ओऽम्! करतीन चार डकारें लेती है, "तूने इन्हें प्राण्ठे नई खिलाने थे," वे अपनी साथिन से कहती हैं। "मेरा बायगोला जाग गया।" मुझे अपनी दादी याद आती हैं, उन्ह भी इसी तरह के तिलिस्मेहोशरुबाई मज हुआ करते थे—गोला उठना, चिलक पडना, दिल धडकना वगैरह-वगरह। और उसके उतने ही गूढ इलाज थे—सतवाँसे बच्चे को पीठ पर चलवाना

मान्तिवी नीबू का अचार चाटना, बासी मुह ताजी मूली खाना। ऐसे रोग और उनके उपचार सुनकर कई बार एकदम परामनोवैज्ञानिक शक्तियो और उडनतश्तरियो म आस्था होनी शुरू हो जाती है नही ? व मुझसे कुछ पूछ रही है शायद यह कि मैं कहाँ तक जाऊँगी। पर मैंने अभी बताया न कि मैं गूगी-बहरी हूँ। कनखियो से मुझे गरियाती व फिर एक-दूसरी म तल्लीन हो जाती है—फिर एक पाठ छेड देती है—

तार माता तारनी, सब दुःख निवारनी।
पहली सज्ञा तारनी, तार माता तारनी।

मेरी आँख लग जाती है।

एक जमाना था जबकि हम लोग घर पहुँचने की सही तारीख और रेलगाडी का सम्भाव्य समय आने से हफ्ता भर पहले लिख भेजते थे, वैसे ही जैसे कि एक वह जमाना था जबकि गुप्तकाल था और स्वर्णयुग था और लोग घरो के दरवाजे नही भेडते थे और बक्सो म ताले नही लगाते थे। फिर धीरे धीरे समय का मुहावरेदार चक्का घूमता गया और देखते-देखते लोग बक्सो व घरो मे ताले और सिटकनियाँ लगाने लगे और हमने चिट्ठियो म व्यक्तिगत मामलो के चर्चे लिखना छोड दिया।

एक वे दिन थे, एक ये दिन हैं" बाबू नाटकीय सास लेकर कहते हैं। 'क' चाचा तुरत समयानुकूल दाद देते अपनी प्याली थाम लेते हैं। वे अभी अपने आध्यात्मिक गुरुजी के चमकीले आश्रम से महीने भर म अपनी अन्दरूनी बैटरी चार्ज कराकर लौटे हैं और गहन आत्मिक गुणो से रेडियम की सुई से चमक रहे हैं। 'भीतर शान्ति हो तो बाहर की अशान्ति विचलित नही करती।' उनकी नाभि से एक कमल फूटता है कमल पर उनके गुरु बैठे हैं जिनके आश्रम म आस्ट्रेलियाई सक्कर साड स उत्पन्न गायें गोरस की गगा बहाये है, साँड का भारत लाना की सरकारी आज्ञा क चाचा ने अपने सरकारी बल प्रताप से चाँदी के थाल पर धरकर उन्हे हमारे सामने दी थी। 'मेरे दो जमन ट्रैक्टर बम्बई म याड पर रुके पडे हैं' गुरुजी ने बच्चो की-सी निश्छल हँसी से कहा था 'तुम्हारी निकम्मी सरकार बस

आपत्ति पर आपत्ति उठाये चले जा रहे हैं। इन्ने तो कॉलेज एक्सचेंज में
पहले ही दाम चुकता कर दिए थे, दे देंगे लौट।" उन्होंने 'क' चाचा को
कान मार के चमड़े के बटुए से स्लीप दिखाली थी। "हो जायेगा", इतना
कहकर 'क' चाचा भक्तिभरी आँखें मूंद लेते हैं। हो जाता है। उडन-
तश्तरियों! तुम्हें न देखते हुए भी मुझे पूरा यकीन है कि मंगलग्रह में प्राणी
जरूर बसते होंगे। हमारे ही सरीखे। क्योंकि हम लोगों से बड़ा अजूबा हो
ही क्या सकता है। नहीं?

"तो समझे? अन्दर की दुनिया कल्टीवेट करो।" 'क' चाचा संजीदगी
से विलायती रोथमंस सिगरेट का सुनहला दिलकश कश लेकर बड़े भैया से
कहते हैं। "और बाहर की दुनिया आप लोगों के हवाले कर दें, क्यों?" भैया
तल्खी से उठ जाते हैं। घर में अचानक इतना धुआं भर गया है कि आँखें
नहीं खोली जातीं। "आप परेशान न हों भाभी," 'क' चाचा शर्म से पानी-पानी
होती माँ से कह रहे हैं, "मैं इन लोगों की बातों को गलत नहीं लेता, यह
तो उम्र ही ऐसी है। हम भी जब इस उम्र में थे ..." मैं अच्छी तरह देख
सकती हूँ कि आप जब इस उम्र में थे तो क्या रहे होंगे 'क' चाचा। सिर पर
पफ्फेदार बाल बनाये, माँ की पसन्द के स्वेटर पहने। [illegible]।
और क्या? पर वे चालू हैं, "गुरुजी तो कहते हैं कि आदमी को अपनी हर
इच्छा पूरी कर लेनी चाहिए ताकि शरीर की वासना आत्मा की शुद्धि की
राह न रोक सके। 'क' चाचा का प्रवचन जारी है। अभी पिछले ही हफ्ते
जब मुन्ना चाचा अपना कुण्डलीशास्त्र [illegible] बैठे थे तो
यही साहब लगभग गिड़गिड़ाते हुए उनसे पूछ रहे थे कि "उनके बृहस्पति में
सूर्य का प्रवेश कब होगा, क्योंकि अब [illegible]
रेस' में प्रमोशन का पत्ता काटे जा रहे हैं। [illegible]
बुखार में भी वे अपने बड़े आगर की [illegible]
पर तै करने असली [illegible]
कैण्डीडेट को इण्टरव्यू की तैयारी में [illegible]
देते रहे हैं। पर अगर शादी की [illegible]
बतनी ही पड़ती है। क्या भाई साहब? [illegible]
और थी। एक तो यूँ ही [illegible]

जाता है

'क' चाचा खुर्राट वश लेते हैं, उनका नाम इस बार जॉयट सेक्रेटरी पनल में आ गया है। अब अल्ला के किसी बदे की मजाल नही कि उन्ह टम मे मस भी कर सके, "बस सेन्टर म पहुँचन की देर है। सर्विसेज का तो, भाभी, अब सारा चाम चला गया। अग्रेजो का चाहे जो कहो, आदमी की परख थी उन्ह। आखिर जभी तो सकडो बरस मुल्क पर हुकूमत कर गय।" वे धुए का छल्ला निकालते है। "कपडो का सलीका बोलने का ढग, कुछ भी ले लो, पुरान अफ्सर वाकई म थे अफ्सर। क्या शालीनता, क्या रोआब वर्ना अब तो कैसे-कैसे देसी टाइप टुच्चे लोग चले आते है जो या तो एक जुमला अग्रेजी भी सही नही बोल सकते या बस माओ और चे का नाम लेकर अलख जगाने फिरते है। क्या अवमूल्यन हुआ है युवा पीढी का! एकदम राजनैतिक इन्वाल्वमेण्ट नहीं।'

"और जो अपनी राजनतिक मान्यताओं से जेल गये है सो?" बडे भैया दूध के कढाव म अम्ल की खट्टी-खट्टी-बूद से टपक पडते हैं। उनके बारे मे अपकी क्या राय है?"

"सो तो नक्सली और फासिस्ट लोग हैं, जिन्हे तुम्हारी ही पीढी सर पर उठाये है।" 'क' चाचा तनिक तल्खो से कहते हैं। फिर उन्ह अपने गुरु की चेतावनी और अपनी आत्मिक गरिमा का ख्याल नर्मा जाता है और वे कहते ह कि हाँ, कुछ बार जरा धरापकड मे ज्यादती हो जाती है। सो यूँ कि जो आडर लेनेवाले छोटे अफ्सर होते हैं, बडे दो कौडी के होते हैं (बाजारू मुहावरे की बाजारू दाद के लिए हमारी तरफ नजर प्रक्षेप) पर जब तक कर्रे न पडो, शासन नही हो सकता, ये पाठ हमे अग्रेजो से भी सीखना ही होगा। व अँगडाई लेकर जिस्म तोडते हैं। अभी वे एक डेलीगेशन को लेकर लम्बे विदेशी दौरे से लौटे हैं उनके नैतिक कत्तव्यभार की थकावट अभी भी उनकी रगें चटखा रही है। शालिनीजी, आपकी मिक्सी ले आया हूँ इस बार, कस्टम्स को चरका देकर, चलें अब।' सब लोग उठने लगते हैं।

क्या हुआ? बडी जल्दी आ गयी? तुम्हारे तो महीने के आखिर से इम्तहान

शुरू हैं ना ? ड्राप करने का इरादा है क्या ?" छोटा बात को घुमा फिरा कर कम ही कहता है। फिर उसने सूटकेस उठा लिया, मैंने बैग।

' नाऽऽ ही, वह तो नहीं। शायद इम्तहान ही पोस्टपोन हो जायें, पर पक्का नहीं।"

"वाह, तुम लोगों ने हड़ताल नहीं की क्या ?" छोटका धम्म-से कोने में सूटकेस पटक देता है।

"क्या पत्थर भर लाती हो इनमें तुम !"

"सब कहाँ गये हैं इतनी सुबह ?" मैं कूल्हे पर पसीना-पसीना गदेलियाँ पोंछती हूँ, "घर में एकदम सियार बोल रहे हैं। अम्मा-बाबू ?"

"हॉस्पीटल।" छोटा बेमतलब मक्खीमार-से दो तीन वार अनदीखती मक्खियों पर करता है।

' ऐं ?" आश्चर्य से मेरा मुंह शायद देहातिन की तरह खुल गया होगा। छोटा तुरत मुझे यह जानकारी भी दे देता है।

"पर क्या गये हैं ?"

"बीमार लोग कहाँ जाते हैं, मंदिर ?"

चिड़चिड़ाहट में उसकी किशोर आवाज फट जाती है। मैं अचानक देखती हूँ कि उसकी नाक के नीचे उग रही हल्की रेख के तले उसका चेहरा कितना डरा हुआ और कच्चा है।

'आखिर है कौन बीमार ?" मैं तनिक मुलायमियत से पूछती हूँ। बचपन में उससे तनिक-सी ऊँची आवाज करके बोलते तो अम्मा की गोदी में मुंह छिपाकर पिल्ले-से रो देता था। गावदी कहीं का।

"अम्मा बीमार है, और कौन ! उन्हीं को तो शौक है चुपचाप ये सब रोग पालने का। वह एक रिसाला उठाता है, फिर झुंझलाकर फेंक देता है। "चाय पीने का मन हो तो रुकना पड़ेगा। हरी बाजार गया है।"

'हुआ क्या है आखिर ? '

'पता नहीं, छाती पर शायद कोई गाठ-सी मालूम हाती थी, बायोप्सी को भर्ती हुई हैं। दो दिन हो गये। आज कल में टाँके कट जायेंगे, वैसे आज घर आ जायेंगी। बाबू भैया लेने गये हैं।" छोटे ने फिर कुछ वार हवा में किये और नाक सिकोड़ी, "तुम नहा धो क्या नहीं लेती ? बकरी जैसी गंधा

रही हो !"

मैं उसे आग्नेय नेत्रों से देखकर बाथरूम में घुस जाती हूँ। हमेशा छाँट कर नाटकीय मौका चुनेंगी अम्मा भी। हर एक काम के लिए। एक तो पढ़ाई की, इम्तहान की अनिश्चितता से सभी यूँ ही तनके हुए हैं, ऊपर से छाती पर गाँठ। मेरा साबुन फिसलकर पटले के नीचे जा घुसा। साले ! तेरी ऐसी की तैसी। दाँत पीसकर मैंने हाथ फैलाया। पटला पुराना था और ऊपर से साफ दिखने के बावजूद नीचे से पानी के लगातार स्पर्श से उसकी लकड़ी एकदम पिलपिली हो चुकी थी। नाखूनों से उसका कीचड़ धोते मैंने सोचा कि अभी बाहर निकलकर हल्ला मचाऊँगी। बस ऊपर-ऊपर की सफाई होनी है इस घर में, भीतर चाहे जो गूदड़ पड़ा रहे। जहाँ आँख पड़े बस वही साफ करेंगे ! वाह ! क्या कहना ! तौलिये के लिए हाथ बढ़ाते ही मैंने पाया कि तौलिया तो बाहर ही छूट गया था। दाँत भींचकर मैंने बुलकारा—"छोटे—तौलिया !" कोई और वक्त होता तो कई मिनट सता-कलपाकर बेहद अहसान जताता हुआ एक हाथ तौलिया फट्ट से पानी में फेंक जाता। पर आज तौलिया चुपचाप हस्तान्तरित कर दिया गया।

"क्या रिएक्शन हुआ ?" तौलिये से बाल रगड़ती, मैं छोटे से पूछती हूँ, सामने पड़े अखबारों में बजट की सुर्खियाँ हैं।

"हुँह" छोटे कन्धे उचकाता है। "सभी को पता है वही फिर होने लगेगा।" सिर्फ तमाशा ही तो है हर बार !

"मान लो कि फर्क पड़ा ? तब ?"

"अखबार पढ़ती हो कभी वहाँ ? छोटे एक बेहद फूहड़पने से बनायी चाय की प्याली रख देता है—"पढ़ती होती तो शायद " वह बात आधी छोड़कर बेहद गुस्से से पीठ खुजाने लगता है।

"नहीं, सच बताओ अगर तुम वोट दे सकते तो अब किसे देते ? यानि अगर दे सकते तो ?"

"क्यों बतायें आपको ?" कुछ देर को छोटे की आँखों में परिचित शैतानी चमकती है फिर वह भेद भरे ढंग से झुकता है "पता है इस बात पर सब साले मुँह सिये हुए हैं। और तो और, हरी से भी पूछो तो टाल देता है।"

"मतलब ?"

"मतलब क्या ? अरे वोट का मतलब ही क्या रह गया !"

हम दोनो चुप हो जाते है। किसी भी चीज का साला क्या मतलब रह गया है ? अचानक मुझे लगा कि छुटिटया मे घर आना कतई बेमानी था। यानि कि अगर लौटने के लिहाज से देखो तो। 'गुड लक !' मैंन अपने आपसे कहा, 'और दस दिन तुम्हे काटने हैं यही।'

बालो का गुच्छा उँगलिया पर लपेटकर कूडेदान मे डालने को निकली ही थी कि कार रुकने की आवाज आयी, फिर दरवाजे खुलने-बन्द होने की, फिर छोटे का एलान—"सुधा आ गयी।' तब तक मैं भी बाहर थी। अम्मा वैसी ही लग रही थी। सिवा इसके कि बिन्दी नही लगी थी और बाल उडे-उडे-से थे जिनसे चेहरा कुछ थका थका-सा लगता था, बस।

"कब आयी ? ' अम्मा ने कन्धे पर हाथ रखा। "तार कर दिया होता। स्टेशन स घर कसे आयी ?'

"इजनड्राइवर पहचान का था, ट्रेन घर तक ले आया।"

"इस लडकी की जुबान तो " अम्मा की बात आधी शिकायत और आधी हँसी मे हमेशा की तरह अटक जाती है। वे मुझे बाहो से ऐसे घेरती है, जसे मुझे नही मेरे द्वारा बनाये गये स्पेस का आलिंगन कर रही हो।

"तुम कब आये ?" मैं भैया से पूछती हूँ।

'दो-तीन दिन हुए,' उडता-सा जवाब देकर वे बाबू के साथ सामान उतरवाने लगते हैं। सामान से, अम्मा मे, बाबू भैया सबसे मुझे अचानक अस्पताल की गन्ध आने लगी है। थकी-बीमार। बुझी-बुझी।

एक थमस लुढकता है।

"टूट गया क्या ?" भीतर घुसती अम्मा पूछती है, 'एकदम नया था।" थका हुआ अभियोग-भरा सुर।

"धीरे धीरे निकालो यार," बाबू भीतर जाते-जाते कहते है। भया का चेहरा तनता है, अस्पताल की गन्ध और तीखी हो जाती है।

"पूरे छब्बीस रुपये सत्तावन पसे का है। समझे गावदी ?" भया छोटे

से पढ़ते हैं।

"सेल्स-टैक्स अलग," छोटा जोड़ता है। "वह भी पहले का लिया था, आज तो " दोनों हँस पड़ते हैं। अम्मा भीतर लेट गयी हैं। 'चाय पियोगी ?" मैं पूछती हूँ।

"नहीं, जी नहीं है, पहले नहाऊँगी, फिर।" अम्मा आँखें बन्द कर ऊपर हाथ रख लेती हैं। मैं उठकर बाहर आ जाती हूँ। लावारिस और फालतू। बाहर छोटा मेरे बैग से मेरी लायी किताबें उलट-पलट रहा है, मैं चिचियाकर उसमें भिड़ पड़ती हूँ कि बगैर किसी से पूछे उसका सामान खगाल डालना कहाँ की शराफत है? कोई चिपड़ा भी प्रायवेट नहीं इस घर में। हर चीज सार्वजनिक सम्पत्ति है। मैं गुस्से से फेड आउट कर जाती हूँ। छोटा किताबें पटककर उठ खड़ा होता है। फिर हवा में तीन चार खाली वार 'जूडो' के करके बाहर चला जाता है। अब वह वे किताबें कभी नहीं लेगा, हालाँकि लायी तो मैं उसी के लिए थी।

बाहर बाबू अखबार पढ़ रहे हैं, मैं भी खिसियाई-सी बैठ जाती हूँ। "इम्तहानों का क्या हिसाब है?" वे नर्माई से पूछते हैं, ढीले-ढाले से। मुझसे बातें करते वक्त उनका दिमाग हमेशा कहीं और रहता है। मैं कुछ पिटा-सा जवाब देकर रिसाला उठा लेती हूँ, बाबू अखबार की सुर्खियों में लौट जाते हैं।

'टक्स तो कुछ घटे हैं इस बार !" मैं सप्रयास जमुहाई छेंकती हूँ।

"हूँ देखो क्या होता है!' बाबू जैसे अखबार की ही खबर पढ़ रहे हों।

तभी धाड़-से दरवाजा भेड़ता छोटा आता है।

'यार जरा तमीज से दरवाजे भिड़ाया करो।' बाबू तल्खी से अखबार झटकारते हैं अखबार के कोने में गोभी के फूल जितना फूल जूड़े में लगाये एक हसीना टेलीविजन बेच रही है। हमारे शहर में अभी टेलीविजन भी नहीं चालू हुआ है। गये साल एक सत्तर मिलीमीटर के पर्दे का सिनेमा घर भर बना है जो अभी तक शहरवासियों के लिए ताजमहल का दर्जा रखता है। हाये, कैसे कटेंगी छुट्टियाँ मैं फिर जमुहाई दाबती हूँ। पहले तो हम दिन काटने को ढेरों सनीमा देख डालते थे छुट्टियों में फिर एक नया रोल लेकर घर में दाखिल होते। कुछ देर को वे नये

नयी मुद्राएँ भँजाते हुए। हम सब पैदायशी एक्टर थे ही। पर्दा खोलते, भँवे उठाते, कन्धे उचकाते हम सब दर्शकों की आँखें अपने पर महसूस करते रहते। बाबू को यह पसन्द नहीं था। उनका कहना था कि जीवन में या तो आप सफल होते हैं या असफल। दर्म्यानी चीज कोई नहीं होती। सो बातों को गम्भीरता से लो और अब बचपना छोड दो। जितनी जल्द हो सके। पर हम जानते थे कि उनका यह गुस्सा भी हमारी मुद्राओं की तरह अन्ततः एक मुद्रा ही थी। मुझे बाबू पर लाड उमड आया।

'अरे भाई, पेशेण्ट कहाँ है ?" प्यार से पानी-पानी हुआ जाता मेरा दिल तलवों तक खिसक जाता है। मारे गये बेमौत, फलों का बैग उठाये 'क' चाचा नमूदार होते हैं।

"आओ यार!" बाबू अखबार डाल देते हैं, मेरे भीतर खतरे का घडियाल टनटनाने लगता है भाइयों को चेताना होगा! आज इतवार है न, अभी बाकी लोग भी आ धमकेंगे, गये काम से!

"कहाँ है भाभी?' चाचा सुर धीमा करते हैं।

"सो रही है शायद।"

'सो नहीं रही है, नहा रही है।" छोटे की किरमिची किशोर आवाज आयी।

'अरे छोटे! भाई, जरा इधर तो आना।" 'क' चाचा अर्थपूर्ण ढंग से बाबू को आँख का इशारा देते हैं, "हम भी तो मिलें अपने एंग्री यंग मैन से, सुना आजकल बहुत मार्क्सवादी हो रहे हैं कुछ लोग।"

"छोटेऽऽ!' बाबू की रौबीली हाँक से मेरे भीतर कुछ खिचकर दूर तक घिसटता विमुख होता चला जाता है। नेपथ्य में कोई हलचल नहीं।

'क्या उम्र है यार हम तो अपने घर में बेगाने हो गये। कल के छोकरे हैं और हमसे ऐसे पेश आयेंगे जैसे कि हमारे चचा हों। एक हमारे बड़े साहबजादे हैं, जिन्ह जमाने-भर के बुजुर्ग दुश्मन लगते हैं, कभी हम-तुम भी नौजवान थे यार पर ऐसी भी क्या ' बाबू की मुद्रा अब प्रताडित पिता की है। सिर्फ उनके बदन पर साटन का ड्रेसिंग गाउन और मुँह में सिगरेट भर नहीं है, वर्ना एकदम हिन्दी फिल्मों के बाप लगते, अभिनय क्षमता की एमेच्योर स्तर पर भी कमी नहीं, मानना पडेगा। क्या चुटीले संवाद,

क्या भंगिमाएँ, वाह !

मैं पैर घसीटती हुई भीतर चल दी। शुरू हो गया था फिर से वही सब। मुझे लगा कि शायद मुझे रो पड़ना चाहिए। पर मैंने खूब जोर से ट्रांजिस्टर पर विविधभारती की सुई लगा दी। यह जानते हुए कि

सुबह। मैंने आहिस्ता से बगल में अलसाते घर को उठाया, परखा, खन-से फेंका, गाच लिया, अब वह मेरी गदेलियों पर चित पड़ा था। शान्त और चपटा होकर। दुबारा उछाले जाने की आशा और आशंका के दरम्यान। मैंने उसे वापस धर दिया और सर तक चादर खींच ली। अभी बहुत जल्दी थी, और उठ कर करना भी क्या था? हमारे शहर में देर तक सोनेवालों की नितान्त कमी है। हो भी क्यों नहीं? शाम सात बजे सड़कों पर साना पड़ जाता है, और रात दस बजे तक तो ऐसी वज्जर चुप्पी छा जाती है कि उस दम शहर को मूस भी उठाकर ले जाय ता पता नहीं चले। पर यह नहीं कि यह सिर्फ रात के लक्षण हैं। चरम जागृति के दुपहरी क्षणों में भी हमारे यहाँ हर चीज समुद्रतले की वनस्पतियों की तरह एक ऐसी अलस तन्द्रिलता से लहराती हुई बढ़ती है जो किन्हीं लोगों की नजरों में काव्यात्मक हो तो हो, पर अगर आपकी अठारह साल की उम्र कुम्मैत घोड़े की तरह आपके जिस्म के भीतर छूट भागने को जमीन खूदे जा रही हो तो पागल बना देने की हद तक खिझा जाती है। अपने को बहुत उदार समझनेवाले हमारे माँ-बाप जैसे लोग कहेंगे कि *जाओ जरा घूम घाम आओ।* पर सवाल उठता है कि कहाँ? कहाँ? कहाँ? इस शहर के समृद्ध नौजवानों की शौकीनी का चरम लक्ष्य यह कि साफ्टी आइसक्रीम खाने सिविल बाजार चल दिये और वहाँ उस अंग्रेजी नाम वाले रेस्तराँ की अँधेरी मनहूसियत में जा धँसे जहाँ हमेशा कच्चे प्याज और भुनी सौंफ की अफरा देने वाली गंध बसी रहती है, और शोरबे के दागों से भरा बूढ़ा वटर आर्डर देते ही मीनू आपके हाथों से झपट ले जाता है। या कि फिर वही सड़क *किनारे नितान्त मनहूस किस्म की चुहलबाजियों में मुब्तिला हो खरामा* खरामा दूकानों के विस्तार के आगे टहलते रहो—चप्पलें, प्लास्टिक के

चमकीले और गैरजरूरी उपकरण, भडकीली साडियाँ, रजाई की फद से ढँका खादी आश्रम, और अत मे केमिस्ट की लटटुओ म जलती-बुझती दूकान ! धत्त !

दिन एक विराट जमुहाई की तरह जबडा पकडे सामने खडा था, और हम आँखें चुरा रहे थे।

आँगन मे अभी धूप अच्छी लग रही थी। वाद को शायद तेज हो जाती। अम्मा पूछती हैं कि हम सबने ठीक से नाश्ता किया कि नही और आश्वस्त होकर मेरी लायी किताब फिर पढने लगती है। उह इस उमर मे भावविह्वल होकर अग्रेजी रूमान पढते देखकर राजा ययाति की तरह हमेशा मेरे बाल सफेद हो जाते है, "अच्छी किताब है, वे मुस्कराकर मेरी परख की दाद देती हैं। हाय री विडम्बना मानव-जीवन की अबूझ प्रहेलिका, हाय ! फिर हमेशा की तरह वे अपना यक्ष प्रश्न दुहराती हैं कि हिन्दी मे ऐसा रूमान क्यो नही लिखता कोई ? यह नही कि हमारे यहाँ साम ती परम्परा नही, या रोमास का अभाव हा—हैं ?

मैं फट पडती हूँ।

कुछ इस तरह की बात कह कर कि—'न कही आयेंगे न जायेंगे, न अपनी उम्र के लोगो मे उठेंगे-बैठेंग तो दिन भर बडो से जुबान लडाने के अलावा सूझेगा भी क्या, ठीक है, हम लोग कितने दिन के है, मा-बाप होने का दण्ड तो भुगतना ही है,—अम्मा लेट जाती है, कमरे म चिलकता दिन भर गया है, भैया और छोटा एक एक कर जादुई बौनो की तरह अलोप हो जाते हैं, बाकी बची म—हमेशा की तरह।

टर ! टर ! बाहर फोन बजा। मैंने उठाया, बुआ का था, वे अम्मा को पूछ रही थी, "अम्मा लेटी है, मैंन कहा। "क्या तबियत ठीक नही ?" वे पूछती हैं। "हाँ ', मैं कहती हूँ। "अरे क्या हुआ ? ' वे पूछती हैं। 'कुछ खास नही, छाती पर एक 'ग्राथ' थी, उसे निकाला गया है बायोप्सी से।" ' कुछ रिपोट आयी ?" उनका सुर चिन्ता जिज्ञासा, कुतूहल, उत्तेजना से ऊँट के योबडे की तरह बलबला रहा था। 'नहीं, अभी मालूम नही कल-परसा तक रिपोट आयेगी।" मैं कहती हूँ। दखो एक शहर म रहते हैं पता ही नही चलता—वो ता मैं ही कभी फोन कर लेती हूँ तब कुशल मिलती है, तुम्हारे यहाँ से तो

कोइ फोन करता नही। यही पता नही था कि तुम लोग आये हो।" चुप्पी।
"अच्छा आना फिर। आशीष, निशा तुम लोगो को याद करते रहते हैं।"
"अच्छा !" मैं भली भतीजी के सुर मे कहती हूँ और फोन रख देती हूँ।

बुआ के घर से हमारे घर तक एक चिलकता-सभ्रात-सशक विस्तार है जिसम असख्य उपालम्भ, बतकहियाँ, सामाजिक बुलावे और खानदानी किस्से फटी पतगो की तरह लटके फडफडाते रहते है। हमारे परिवारो के बीच प्रेम और सशक हिकारत का जायज अनुपात क्या है हमारी समझ म अभी तक आया नही, पर हाँ सामाजिक अवसरो पर आत्मीय मेलजोल की औपचारिकता जरूर कायम है।

"किसका फोन था ?" अम्मा आकर बाहर बैठ गयी थी।

"बुआ का।"

"नाराज थी क्या ?"

"पता नही, हो भी तो तुम्हे क्या मतलब ?

"अरे तुम नही जानती, जरा-जरा सी बातो से ही तो—"

अम्मा की आवाज मे औरताना बतकही का भरपूर गन्देदार फैलाव था। उन्होने गूढ अध्यात्म से यह बात जोडने को एक सुरसुरी सास भी खीची, पर तब तक मैं उछलकर उन्हे फलाग गयी थी।

"अरे छोडो, जिस तिस को लेकर क्या परेशान होती हो। अपनी तबियत खराब करोगी और !" मैंने किताब उठा ली।

"इम्तहान कब तक शुरू होगे ?'

"पता नही।'

'कुछ तो खबर होगी ही।"

"मुझे नही मालूम बाबा ! पर्चे तो जितने खराब होने हैं होगे ही।" अम्मा हँसने लगी— आज तक कभी तेरे पर्चे बिगडे भी हैं, जो अब खराब होगे ।

"कोई गारटी है क्या ?' मेरे भीतर फिर भददे दाँतदार बनले जानवर मँडराने लगे थ, "या तुम्हारे मुन्ना चाचा के ग्रह-नक्षत्र इस तरफ भी रक्षा कर देंगे ?"

अम्मा इस वक्त झडप के मूड मे नही थी, सो टाल गयी। "तुम न

मानो पर मुन्ना कहते हैं कि बुद्धिबल तो हमेशा ही —"

"मान लो सिर्फ मुन्ना चाचा की भविष्यवाणी उल्टी साबित करने मैं फेल हो जाऊँ तो ? बोलो, इसे रोक सकती हो ?"

अम्मा कतई झगड़े के मूड मे नही हो तो नारदमुनि भी उन्हे नही लड़वा सकते। वे फिर हँसने लगी।

"क्यो बेकार सुबह से लड़ने का मौका ढूढ रही है, कही हो आ न ! इतनी पुरानी सहेलियाँ है, कोई भी छोड आयेगा !"

"बोर है सुसरी सबकी सब !" मैंने गुलेल की तरह अपने को खींचा और लद्द-से तखत पर गिर पडी।

"मैं बताऊँ अम्मा, तुम मेरी शादी कर दो।" मैं बेहद सजीदगी से टागें नचाने लगी। 'हमारी माँगें कुल चार है। एक—खूब अच्छे स्वभाव का हो, कभी भी गुस्सा न करे। दो—इकलौता लडका हो ताकि नन्द-फन्द का द्वन्द्व न हो। तीन—शक्ल सूरत, से ठीक ठाक हो। और चार—दिमाग का भुस।' भैया प्रकट हुए—"इतना पढ लिख कर भी माँगोगी वही औरतो की पत्रिकाओवाला चौडा चकला बनमानुस ! आह !"

मैंने लात चलायी, जो नही लगी। बहुत दिन के बाद हम सब हँस रहे थे। मैंने भीतर दूसरी जोकरी मुद्रा खुश होकर तलाशी, पर खुशी स्थायी हो कैसे सकती थी इस घर मे ? तभी टर ! घण्टी बजी। लो ! मौसियाँ आ पहुँची थी। बच्चो, चाभियो, टोकरियो और सहानुभूति से लदी फँदी। हमने अपने आप को तुरन्त तहा लिया और इधर-उधर होने की सोचने लगे।

"आजजरा घर मे रोनक-सी दीख रही है।" मालिनी मौसी बैठ गयी। शालिनी मौसी अपने पिनक्ते बिगडल बेटे को अग्रेजी मे डांटने लगी।

"सुधा, जरा बाहर स्कूटरवाले को पैसा तो दे आ।" मालिनी मौसी ने पर्स खोला।

"क्यो कार क्या हुई ?' अम्मा शालिनी मौसी की बेटी को सहला रही थी।

अरे कार की क्या पूछती हो ? पुरानी गाडी है हर छठे दिन गैरिज मे—और फिर कभी दो सौ से कम बिल नही आता। हम तो सच मारे गये

इस महँगाई में।" छोटे और भैया समझदारी से पहले ही स्कूटर को पसा देने फूट लिये थे। मैं फँसी हुई इधर-उधर ताकने लगी।

"शालिनी, तेरी आया ने क्या कुछ तै किया फिर, रहेगी कि जायेगी ?"

अम्मा के पूछने की देरी थी कि शालिनी मौसी का थमा फौवारा फूट निकला। इस वक्त उन्हे देखकर कोई नही कह सकता था कि कभी अपने जमाने मे वे भी एक जहीन दिमाग रखती रही होगी और सुबह तीन बजे का अलाम रखकर ई एम फोस्टर पर नोटस बनाती अब तो मालिनी मौसी के कड़वे वैराग्य, मुन्ना चाचा के नक्शों और 'क' चाचा के मजाकों ने उन्हें इस कदर डरपोक और पिलपिला बना दिया था कि वे अभियोगों और आसुओ से लस्त एक चपटा आकार-भर बनकर रह गयी थी। भैया का कहना था कि उनके चोट भी लगती हो तो उसमे से खून के बजाय आँसू निकलते होंगे। च्च च्च च्च ! इस वक्त भी प्रसग की प्रासगिकता की रक्षा *करती हुई मा और मालिनी मौसी उनके चारा ओर डने फैलाये मुर्गिया-सी,* सात्वना देती अग्रेजी म कुडकुडाने लगी—

'बेचारी, बडी परेशानी है इसकी भी—"

"वही तो, छोटे छोटे बच्चे और मदद के नाम पर कोइ नही।'

'कसे लाड से पली थी बिचारी।

"सच मे सोसायटी तो बदल रही है वैस्ट की तरह पर वहा की कोई भी सुविधा यहा घर की औरत को नही।"

और परेशानिया वही, ऊपर से महँगाई।"

मैं किताबें समेट कर उठने की फिराक म थी कि शालिनी मौसी ने, जो अब तक अपने दैनंदिन स्यापे स फारिग तथा पारिवारिक सवेदना से तप्त हो चुकी थी, रोक लिया—' कहा चल दी—बठो न !

"पढना है।"

"अरे रोज रोज का एसा भी क्या पढना ? हम लाग कोई रोज रोज थोडे ही आते हैं।

"बठो भी, हरदम पढ लिखकर ही क्या करना है ?'

'और क्या ?' शालिनी मौसी की खतरनाक ढग से डबडबाई आखें सुदूर क्षितिज पर टँग जाती हैं। तीन साल पहले उन्हाने दबी इच्छा व्यक्त

की थी कि वे सोचती है, प्रायवेटली पढाई पूरी कर दें, पर मुना चाचा की भृगुसहिता मे उन पर शनि की महादशा का अंतिम चरण चल रहा था, उसमे नये काम म हाथ डालना ठीक नही होना। फिर पति की सुविधा, फिर बडे बच्चे के लिए भरोसेदार आया ढूढने का सवाल। 'क' चाचा की राय ली गयी तो उन्होने गुरु-गम्भीर सुर म कहा कि हर औरत का पहला नैतिक कतव्य पति-बच्चा और सास-ससुर की सेवा हो जाता है, इसम चूक नही होनी चाहिये। वाह, क्या समझ है! अम्मा गद्गद हो गयी थी। शादी नही की तो क्या? व्यावहारिकता की कैसी पूरी समय है चाचा को, छाडो यह सब कुछ। वहुत है भगवान का दिया, तुम्हे जरूरत भी क्या? फिर तभी शालिनी मौसी के पेट म दूसरा बच्चा आ बैठा और बात इधर उधर हो गयी।

मैं फिर उठती हूँ।

"बैठो न!" मालिनी मौसी का सदाशय प्रेम मुझे चटखा जाता है।

"दुबली हो रही हो इस बार!" वे हर बार की तरह कहती है। पढाई बहुत कर रही हो क्या?" नही, ऐसा तो नही, कुछ इस तरह की बात मैं कहती हूँ, पर मालिनी मौसी की रुचि अब मुझ मे नही है। "सच जीजी, मैं तो अपने इस बढते वजन से तंग आ गयी—" वे अम्मा से कह रही हैं। अम्मा हमेशा की तरह प्रतिवाद करती हैं कि ऐसा कहा? तब तक शालिनी मौसी को भी अपन बढते वजन का खयाल आ गया है। फिर वे अंग्रेजी की किसी गहोपयोगी पत्रिका म छपे वजन घटान क नुस्खा की चर्चा करन लगती है। मैं सप्रयास जमुहाई रोकती हूँ, 'अब किस क्लास मे है पिण्टू?"

शालिनी मौसी दाना हाथा से भकाभक दालमोठ मुह म ठूमते अपने पुत्र पर एक करुण दृष्टिपात करती हैं—"थड मे है।"

'क्या-क्या पढत हो पिण्टू' —मुह से बात निकलते ही मुझे अपने प्रश्न की सदाशय निरथकता चुभती है। यही प्रश्न घर के हर बडे ने घर के हर बच्चे से कभी न-कभी पूछा होगा, और शायद ही कोई बच्चा इसका जवाब देना चाहता हागा।

'जीजी को बताओ न, वह उत्तर का इतजार कर रही ह—' शालिनी मौसी अंग्रेजी मे कहती है। अपने बच्चो स हमेशा जहा तक याद

रह वे अंग्रेजी में ही बोलती हैं। पिण्टू चुपचाप खाता रहा। मैं होती तो मैं भी यही करती। शाबाश बच्चे! तुम्हारे लक्ष्य ठीक-ठाक हैं अभी तक!

"स्कूल अच्छा है?" मैं प्रश्न माँ की ओर मोड़ती हूँ। मेरे उत्तर पाने से पहले एक झन्न की आवाज के साथ दालमोठ की प्लेट फर्श पर गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। पिण्टू भय से जड़ खड़ा है। विद्युत गति से उसकी माँ दो तमाचे देती है। "यू स्टूपिड ऐस!" "स्टूपिड योरसेल्फ!" पिण्टू रोते रोते चिल्लाता है। शालिनी मौसी भी चीखते चीखते रो पड़ती है फिर अम्मा और मालिनी मौसी कुछ नहीं-हुआ-बच्चा ही-तो-है, से माता को और-अभी इत्ती-बड़ी प्लेट दालमोठ देंगे, से पुत्र को एकसाथ चुपाने का निष्फल प्रयास करने लगती हैं—नेपथ्य से छोटा भँवें उचकाकर मूक इंगित से पूछता है कि अब क्या हो गया? वैसे यह नयी बात नहीं न ही सचमुच इससे किसी का कुछ होता-हवाला है। यह छोटे छोटे वाकये भी इस शहर की ठस जिन्दगी न खलबलायें तो ये उकताई माँयें पागल न हो उठें? हरी दालमोठ की दूसरी प्लेट और कुछ मीठा रखकर किर्चें बटोर ले गया है एक अन्तिम आग्नेय दृष्टि अपने बच्चा पर डालकर शालिनी मौसी फिर सामान्य हो चली हैं। बात महँगाई पर उतर आयी है। पूरा नहीं पड़ता, ऊपर से रिश्तेदारों की आवत जावत और अंग्रेजी स्कूलवाला की माँगें—आज फलाँ सेण्ट का उत्सव है तो आज पोप का जन्म दिन है—और हिन्दी स्कूल ऐसे हैं कि दो वाक्य अंग्रेजी के सही नहीं बोल सकता उनका प्रिंसिपल भी! बच्चों का भविष्य तबाह करना हो तो वहाँ भेजो! काश हम इनको बाहर कहीं हास्टल भेज सकते! उनके वक्तव्य का कथित सुर अम्मा का कलेजा हिला जाता है—फिर वे नर्माई से समझाने लगती हैं कि ईश्वर जो है उस पर भरोसा रखना चाहिये, यह जीवन जो है एक आलमारी है, देर सबेर इसके सभी खाने भर ही जायेंगे। बस धीरज रखो! बाकी तो सब माया जाल है—मन का विवेक और आत्मा की शुद्धि—मैंने कान बन्द कर लिये हैं और झटके से उठ खड़ी होती हूँ— पढ़ना है। मैं भुनभुनाती हूँ। भैया और छोटे गायब हैं। दगाबाज कहीं के! हुँह! जीवन एक आल्मारी है! आज का विचार—'थाट फार द डे'।

"क" चाचा भी दीवानखाने मे आ गये थे शायद। हम पारिवारिक आवाजों को फड़फड़ाते अखबार के नीचे दबाते हैं, पर कान हम तीनों के उधर ही लगे हैं। अखबार मे बेतहाशा खबरें छपी हैं—अल्पसंख्यकों के अधिकार, जनता का हाहाकार, महिलाओं का चीत्कार, संघर्ष की पुकार —सामुदायिक/खर्च पूंजीनिवेश। बजट-बजट-बजट! वहां वे लोग भी शायद इसी के चर्चे कर रहे हैं। अम्मा कहती है कि मुन्ना चाचा अगले दो साल तक देश के नक्शों की स्थिति मे कोई परिवर्तन नहीं देखते। नहीं देखते कि नहीं चाहते? हूं? बोलो! पर, अम्मा बात बढाती हैं, विकल्प ही क्या है देश के पास? फिर वे कुछ रुककर अपने गुरु गम्भीर स्वर मे चार हजार पाँच सौ छप्पनवी बार अपने जीवन-दर्शन का रुपहला ज्ञानमुक्ता दिखाती हैं, "तोड़ना तो बहुत आसान है, पर मैं पूछती हूं कि जो हमारी यंगर पीढ़ी तोड़े जा रही है, तोड़े जा रही है, उसे 'रिप्लेस' किससे करेगी? यानी एक हमारी संस्कृति है, एक मर्यादा है, एक "

"अब यह पीढ़ियों का टकराव तो एक चक्र-सा है" एक थकी आवाज कहती है, "चल गया चल गया—रुकना तो मुश्किल है इसका। सवाल है कि क्या कुछ तरक्की हुई है? देखकर तो"—"नहीं नहीं, ऐसा नहीं।" सरकार के वफादार ताबेदार गम्भीर स्वर देश के स्वर्णिम सामुदायिक आँकड़े दे रहे हैं—"जो हड़तालें स्थगित हुइं, जो उत्पादन बढा, जो जनसंख्या मे घटती हुई, जो हिंसा और गुलगपाड़े मे कमी हुई उसकी कंदीलें देश के अँधेरे मे कैसे जगमगा रही हैं। बताओ! अगर ऐसे लोग न होते तो कभी तुम लोगों को इतना मालूम हो सकता था क्या? कि सरकार बहादुर अपनी प्यारी अवाम के लिए—"

'अब ऐसा है भाभी"—अभी 'क' चाचा की नक्की आवाज उभरती है, 'कि अपने-अपने दृष्टिकोण की बात है। मेज पर एक अधभरा गिलास हो तो आप यह भी कह सकते है कि यह तो आधा भरा है या यह तो आधा खाली है पर अब आजकल आपका-सा सरल और आस्थावान अपने देश मे विरला ही होगा जो कहे कि गिलास तो आधा भरा है। ज्यादातर तो यही कहेंगे कि यह तो खाली है। क्यों साब, क्या मैं कुछ गलत कह रहा हूं?" एक चिपचिपा और गाढा अनुमोदन शहद की,धार की तरह कमरे

मे फेंकता है। 'क' चाचा कुछ रुककर फिर बोलने लगे हैं—"हमारे गुरूजी का कहना है कि जीवन एक मुट्ठी है।"

क्या दिन आये हैं ! जीवन न हुआ जादूगर का रूमाल हो गया। कभी सुसज्ज आल्मारी बन जाता है तो कभी मुट्ठी !

'जितना इसे कसकर बन्द रखोगे उतना ही भीतर से खाली रहेगा, जितना फैलाओग उतना ही भरेगा ! क्यों भाभी ?" फिर बात उनके गुरु के गहन इन्द्रियातीत ज्ञान और रहस्यवाद की ओर मुड जाती है।

"किसी ऐसे-वैसे नही, रायल खानदान के हैं गुरुजी। पर साब, मानते हैं अपन ईस्टर्न रहस्यवाद का लोहा हम भी ! पश्चिम मे रखा ही क्या है ? बस अनाप शनाप भौतिकता—"

'वही तो मैं भी कहती हूँ रुपये पैसे से क्या होता है ? असली चीज तो आत्मा की शान्ति है। अब मँहगाई के चर्चे लुप्त हो गये हैं गहन अध्यात्म एक अगरबत्ती की तरह हर सडाध को ढकता महक रहा है। कोई कहता है कि अंग्रेज तो अब पिटी हुई कौम है साहब ! उनके दिन तो गये ! कोई तुरत चेंपी देता है कि अमरीका भी अब रोमन साम्राज्य की तरह पतन के कगार पर है—उन पर अपने कर्मों का वज्र शीघ्र ही गिरेगा ! इटली भी तो ! जर्मनी भी तो ! जापान भी तो !

'साब, भौतिकता की तो हार होनी ही है ! अन्त मे रह जायेगा सिर्फ प्रेम और विश्वबन्धुत्व !' 'क' चाचा कुछ चुभलाने के लिए रुकते हैं—

'पिछले दिनो जब मैं फ्रांस मे था, एक बूढी मुझसे लूव्र मे कहने लगी कि उसकी दिली तमन्ना है कि वह अगला जन्म यदि ले तो भारत म ! दुनिया की समस्याओ का हल अगर अन्तत कही स निकलेगा तो इसी तीसरी दुनिया से ! बाबू की नपी-तुली आवाज अंग्रेजी म कहती है—'विकासशील देश ही दुनिया की आर्थिक व्यवस्था सँभालेंगे और नयी मूल्यव्यवस्था देंगे। यह याद रखना !"

इतनी भारी-भरकम उदघोषणा के बाद कुछ देर कमरे मे सन्नाटा रहता है—फिर हरी कुछ गम ले आता है और बातचीत नये जोश से फूट निकलती है "अंग्रेजी तो आप हटा ही नही सकते," मालिनी मौसी अपना प्रिय मुद्दा दोहराती हैं 'आज जब बाहरी शिक्षा से जुडने की एकमात्र बडी

अंग्रेजी है तो आप उससे विमुख हो जायें, ये कहाँ का न्याय है ?' "राज-नैतिक प्रोपेगैण्डा है जी सब !" उनके पति तल्खी से दोहराते हैं, "इन सब हिन्दी-प्रेमियों के बच्चे किन स्कूलों में पढते हैं जरा यह तो पूछकर देखो !"

"और, तहजीब तो बिल्कुल इन हिन्दी स्कूलों में नहीं," शालिनी मौसी अंग्रेजी में कहती है। उनका बेटा अभी दो प्लेट पकौडे, अनेकानेक टुकडे मिठाई के व चार थप्पड खाकर सोया है !

फ्राडस ! बडे भैया तल्खी से अखबार पटक देते है। हरी आकर कहता है कि माजी हम तीनों को चाय पीने को वहीं बुला रही हैं।

"कह दो हम यहीं पियेंगे।" बडे भैया मेरी बाह पकड लेते हैं, "ठहरो, तुम नहीं जा सकती।"

"ठहरो, यह शादी नहीं हो सकती।" छोटे गम्भीर चेहरा बनाये दुहराता है। हमारी हँसी छूट जाती है।

हरी शायद भरी सभा में हमारे निमन्त्रण को अस्वीकार करने की बात कह रहा है—अचानक वहा सन्नाटा छा जाता है। हम तीनों बर्फ की तरह ढक चेताये तैयार है। कुछ देर फिल्म के 'स्टिल' की तरह सब आधा-अधूरा टँगा रहता है, फिर प्यालियों की खनखनाहट के साथ बातचीत चल निकलती है—

"फैशन है फैशन" कोई कह रहा है। "बस भेड चाल है जी ! कोई आदर्शवाद वगैरा नहीं रह गया, सब पश्चिमी पढाई , एक हमारा भी जमाना था, अंग्रेजी हमने भी पढी थी, पर यह थोडे कि अपनी संस्कृति कैपिटलिज्म सिनिसिज्म मर्यादा। ऊँच नीच की समझ अनुभव ज्ञान "

'क' चाचा अपना आचार्यत्व भरा गला खँखारते है। कमरा विराट उद्घोषणा के इन्तजार में चाय-पकौडे तिलकुट और मठरियाँ चुभलाता है—"दरअसल बात यै है" 'क' चाचा कहते है, "कि आजकल की युवा पीढी के ढोल में एक बहुत बडी पोल है (सामूहिक हास्य) वह यह कि उनका कोई दर्शन नहीं, अगर कोई है तो यही कि हर कोई अपनी फिकर करे। माँ-बाप भाई-बहन जायें कहीं भी, उन्हे क्या ? देश, धर्म, संस्कृति इनके लिए कुछ नहीं ! क्या भाई साब, कुछ गलत कहा मैंने ?" अब शर्मा मालिनी

फोन बजता है—ट्रि ट्रि !
चुप्पी—ट्रि ट्रि !
बाबू फोन उठाते हैं।
बाबू फोन रखते हैं।

बाबू कहते हैं कि अम्मा की रपट आ गयी है और सब ठीक है। कैंसर का कोई निशान उनकी गाँठ में नहीं मिला। उनका स्वर इत्मीनान से भरा हुआ है। चुप्पी। फिर अम्मा हँसती हुई कहने लगती हैं ऊंह तो पहले ही पक्का था कि कुछ निकलेगा नहीं, क्योंकि मुन्ना ने तो उनकी कुण्डली देखकर पहले ही कहा था कि अभी बड़ी शल्यक्रिया का योग नहीं है।

"अरे हरी, जरा चाय और लाना !" 'क' चाचा बुलकारते हैं, "जरा स्पेशल लाना इस बार, समझे !" कमरा लोगों की चहचहाहटों से फिर भर

। भैया लपककर कुर्सी से छूट निकलते हैं और ब्रूस-ली की
र छोटे की गर्दन पर 'कराटे' का हवाई वार करते हैं।
टा उछलकर हवाई कलाबाजी खाता है और उनका वार
र चलाता है।
कड़ लेती हैं।
एक साथ धराशायी हो ऐसे तिलमिलाने
टे …पी हो।

०००

)

मौसी के पति के सामने है, व, जैसा कि उनकी आदत है, तुरत थाली के बैंगन बन जाते हैं। सुक्रने का तत्पर,—' अजी एकदम साफ टक की बात है। हम तो मालिनीजी से कह ही रहे थे हाल म ही, कि बेहतर हो कि अब हम लोग वे बुढ़ापे की लाठीवाले अरमान भूल जायें। इन बच्चों का माया-मोह ही तो सारे कष्ट की जड है। आज हमें यूँ कलपा रहे हैं, कल जब हमें जरूरत होगी तो य उडनछू ! यार, तुम्ही निकले समझदार कि शादी-ब्याह-बच्चो का जजाल नही पाला। क्या कहत हैं उसे कि क्या नाम, जोरू न जाता, अल्ला मियाँ से नाता।" प्यालियाँ फिर खनकने लगती हैं। झन ! कुछ गिरता है। छोटे न कुछ गिराया शायद।

अचानक मुझे लगता है कि हमी निरे गावदी थे, अरे कतई मूढ थे हम, जो इतने अर्से से अपने निरीह माँ-बाप को ही कोसते रह गये। असली दुश्मन तो हमारा आज नकाब उतारकर सामने आया है। यह भेडिया-गेस्टापो 'क', जो खुद को पारिवारिक जिम्मेदारियों से बचाने को शतुर्मुग की तरह अपनी थुरौट गदन गुरु चरणों मे रोप देता है, और अपने गुप्त अरमानों का भद्दा जेबी सस्करण लिये ताक मे छिपा रहता है कि ज्यूँ ही अँधियारे गलियारों मे से कोई घबराया हुआ माँ-बाप का जोडा नमूदार हो, उसे उनकी छाती पर तानकर पूछे—कि क्या तुम सच मे अपने बच्चो के प्यार मे यकीन करते हो ? विश्वासघाती नीच, परमात्मा का कुत्ता, जब कि देश के सत्तर प्रतिशत किसान भूखे पेट गुजारा कर रहे हा, यह अपने पाखण्डी गुरु को सरकारी अनुदान से उत्तम नस्ल के आस्ट्रेलियाई साँड और जमन ट्रैक्टर दिलवाता है ! इसी के हाथो म उन तमाम खिसियाई बिल्लियो का शिखर नेतत्व है जो केन्द्रीय सरकार की औद्योगिक विकास जैसी गूढ परिवतनो की रूपरेखा बनाती या आपातकाल मे बीमार इकाइया के लिए नियन्त्रण अधिकारी नियुक्त कराती हैं। इसी के ट्रक और न रुकने वाले बुलडोजर गरीबो की झुग्गियाँ झोपडे ढहाकर, फिर मोतिया की माला और धूप का चश्मा लगाये अपनी समाजसेवी कृपानिधान बीवियों को सरकारी खेद का चुहचुहाता अगरेजी मरहम पोतने वहाँ भेजती हैं।

यही है हमारा थोथा अध्यापक, हमारा काइयाँ अफसर, हमारा दागी राजनेता और हमारा घूसखोर बाबू !

फोन बजता है—ट्रिं ट्रिं !

चुप्पी—ट्रिं ट्रिं !

बाबू फोन उठाते हैं।

बाबू फोन रखते हैं।

बाबू कहते हैं कि अम्मा की रपट आ गयी है और सब ठीक है। कसर का कोई निशान उनकी गाँठ मे नही मिला। उनका स्वर इत्मीनान से थका हुआ है। चुप्पी ! फिर अम्मा हँसती हुई कहने लगती हैं उन्हे तो पहले ही यकीन था कि कुछ निकलेगा नही, क्योकि मुन्ना ने तो उनकी कुण्डली देखकर पहले ही कहा था कि अभी बडी शल्यक्रिया का योग नही है।

"अरे हरी, जरा चाय और लाना !" 'क' चाचा बुलकारते हैं "जरा स्पेशल लाना इस बार, समझे !" कमरा लोगो की चहचहाहटों से फिर भर गया है।

"है इक्"। भैया लपककर कुर्सी से छूट निकलते है और ब्रूस-ली की खूखार मुद्रा बनाकर छोटे की गर्दन पर 'कराटे' का हवाई वार करते हैं।

"हउप् !" छोटा उछलकर हवाई कलाबाजी खाता है और उनका वार बचाते हुए एक दुलत्ती मुझ पर चलाता है।

"हा !" मैं उसे पीछे से जकड लेती हूँ।

और अब हम तीनो उछलकर एक साथ धराशायी हो ऐसे तिलमिलाने लगते हैं, जसे हमे गहरी मरणान्तक चोटें आयी हो।

०००

मृणाल पाण्डे

जन्म 1946, मध्य प्रदेश मे ।

शिक्षा 1966 म प्रयाग विश्वविद्यालय से अंग्रेजी म एम ए ।

मध्यप्रदश के विभिन्न कालेजो और फिर अमेरिका और यूरोप म पढाने के बाद आजकल नयी दिल्ली के जीसस एण्ड मेरी कालज, म अंग्रेजी की प्राध्यापिका हैं ।

अपनी रचनाओ के बारे म उनका कहना है— अपनी ओर से बहुत ईमानदारी और मेहनत से बनाती हूँ जिसमे मेरे दिमाग का ब्लड ग्रुप, मेरी अस्थि कोशिकाएँ मेरी मज्जा है जरूर, पर इसके बाद रचना रचना है और मैं मै हूँ ।